अनुक्रमणिका

क्रम स.	विषय	प्र.स.
१	निष्किंचना भक्ति का स्वरूप (व्यासाचार्या साध्वी मुरलिका जी)	३
२	कृष्णप्रेमिका करमेती बाई (व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी)	६
३	भक्ति में प्रबल बाधक भक्तापराध (संत श्री बरसानाशरण जी)	९
४	लाल ललना का विहार (साध्वी मुकुंदप्रिया जी)	१०
५	कृष्णप्रेम की तरंगें (साध्वी ब्रजबाला जी)	१२
६	प्रेमानंदमूल कृष्णनाम (साध्वी दिव्या जी)	१४
७	निर्द्वन्द्वता में ही धाम-प्रीति का आविर्भाव (साध्वी नवीनाश्री जी)	१६
८	गौ-सेवा में सावधानी (साध्वी पद्माक्षीजी)	२०
९	श्रीमद्भगवद्गीता (साध्वी देवश्री जी)	२६
१०	आराधना में अवरोधक भेदबुद्धि (साध्वी अचलप्रेमा जी)	२६
११	सत्संग से आसक्ति का नाश (साध्वी श्यामा जी)	३०
१२	DHAAM-NISHTHAA (ravi monga ji)	३१

मूल्य – दस रुपये (१०/-)

॥ श्रीराधामानविहारिणे नम : ॥

॥ राधे किशोरी दया करो ॥

हमसे दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो |

सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो |

विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो |

दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो |

दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो |

कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो |

संरक्षक – श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558

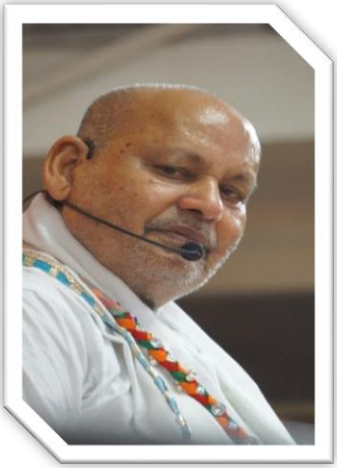

इस संसार में कोई-कोई बहुत गरीब होता है जिसके पास रोटी,कपड़ा,मकान भी नहीं होता,बड़े-बड़े परमहंस महात्मा पेड़ों के नीचे रहते हैं, उनसे ज्यादा गरीब कौन होगा ? साधु भिक्षा माँगता है दूसरे के दरवाजे पर जाकर, लेकिन उसके आगे इन्द्र देवता भी झुकते हैं, क्यों ? क्योंकि उसके हृदय में (भक्तिरूपी) प्रेमधन होता है, जो सबसे बड़ा धन है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ७:३० तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

****

प्रकाशकीय

जिस प्रकार एक कुत्ता किसी भी प्राणी के द्वारा किये वमन को खा जाता है। उसी तरह संत-महापुरुषों द्वारा त्यक्त विषयों का जो भोग करते हैं वे भी निश्चित ही कुत्ता हैं। विषय वमन से भी अधिक घृणित हैं। विषयादि दोषों को जीव माया द्वारा ग्रहण करता है। श्रुतियां सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् को जगाने के लिए प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभो ! लोक कल्याण के लिए इस माया का निरसन करो। यह शरीर जो एक दिन मिट्टी में अवश्य मिलने वाला है, उसे कितनी ही सुख-सुविधाओं में रखो वह तो जिस मिट्टी से उत्पन्न हुआ है उसी में उसका लय है। मिट्टी से प्राप्त अन्न-जल के खाने से माता-पिता के रजवीर्य से निर्मित होता है यह शरीर और मरणोपरान्त पुनः जलने पर या गाढ़ दिए जाने पर फिर मिट्टी ही बन जाता है। इस शरीर को कुलाय कहा गया है। यही मिट्टी यदि भगवद्भजन में अनुरक्त होती तो भगवद्रूप बन जाती। चराचर सृष्टि का पालक भगवान् है। उन परमात्मा को भूलकर नीच प्राणी असदुपासना से नारकीय यातना में ही कष्ट पाता रहता है। सबसे बड़े हितैषी परम पुरुष परमात्मा हैं। हमारा हित तभी होगा जब हम उनके सम्मुख होंगे।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

परन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि हम सन्मुख होते नहीं हैं। महापुरुषों की वाणी कदाचित् हमें सन्मुखता की ओर ले जाए, इसी आशय से यह मासिक प्रसारण हमारे परम विरक्त श्रद्धेय संत पूज्य श्री रमेश बाबा महाराज ने करवाया है। आशा है पाठक अवश्य ही सन्मुखता का अनुभव करेंगे।

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक मान मंदिर

निष्किचना भक्ति का स्वरूप

(व्यासाचार्या – साध्वी मुरलिकाजी के भागवत-कथांश से संग्रहीत)

जब देवहूति मैया ने कपिल भगवान् से पूछा – "हे नाथ ! मुझे विस्तार से भक्तिमार्ग के विषय में बताएँ। भक्ति कितने प्रकार की है।"

तब कपिल भगवान् ने कहा –

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥

(भागवत ३/२९/७)

"माताजी ! भक्तियोग के विषय में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। "स्वभावगुणमार्गेण" सबके स्वभाव बहुत प्रकार के हैं इसलिए भक्तियोग भी बहुत प्रकार का है। अगर किसी का स्वभाव सात्विकता प्रधान है तो उसकी भक्ति सात्विक है। किसी के स्वभाव में रजोगुण ज्यादा है तो उसकी भक्ति राजसी होगी। किसी के स्वभाव में तमोगुण की प्रधानता है तो उसकी भक्ति तामसी होगी। इसलिए भक्तियोग तो अपनी प्रकृति के ऊपर निर्भर करता है, हमारी जैसी प्रकृति है, हमारा जैसा स्वभाव है; भक्तियोग वैसा ही बन जाएगा। श्रीमद्रूपगोस्वामी ने तो भक्ति के चौंसठ अंग माने हैं और यहाँ इस प्रकरण में भागवतजी के टीकाकार आचार्यों ने इक्यासी प्रकार की भक्ति मानी है। सभी लोगों के भक्तियोग के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं – कुछ महापुरुषों ने कथा-श्रवण को भक्तियोग माना है। कुछ भक्तजनों ने भगवान् की अर्चना को भक्ति माना है, जैसे – पुष्टि सम्प्रदाय में ठाकुरजी की बालभाव से सेवा प्रधान होती है, वहाँ दिन-रात ठाकुरजी की विग्रह सेवा में लगे रहने को ही भक्ति माना जाता है। देवर्षि नारदजी ने भक्तिसूत्र में लिखा है कि भक्तों का संग ही भक्ति है। श्रीभक्तमालकार कहते हैं कि भगवन्नाम श्रवण व उच्चारण करते समय नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहते हुए आठों सात्विक भावों का शरीर में प्रकट होना भक्ति है। अतः भक्तजनों के स्वभाव, गुण आदि के विभिन्न होने से भक्तियोग भी विविध प्रकार का हो जाता है।

जब नाभाजी को उनके गुरु महाराज ने आज्ञा दी कि आप भक्तों का यश गाओ तो नाभाजी ने कहा – 'गाऊँ राम कृष्ण नहिं पाउँ भक्ति दाँव को।' गुरुजी ! आप अगर कहें तो मैं रामचरित्र-कृष्णचरित्र गा सकता हूँ लेकिन भक्तों का चरित्र गाना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं है, राम-कृष्ण का चरित्र गाना आसान है परन्तु भक्तों का चरित्र गाना बहुत कठिन है क्योंकि उनके भक्तियोग अनेक प्रकार के देखने को मिलते हैं (भक्तों के चरित्रों में विभिन्नताएँ हैं), मैं उनका पार नहीं पा सकता तो नाभाजी महाराज के गुरु श्रीअग्रदेवाचार्यजी महाराज ने कहा – "नाभा ! तुमको विचार करने की आवश्यकता नहीं है, तुम भक्त-चरित्र लिखने बैठो तो सही, जिस भक्त को अपना चरित्र जिस प्रकार से प्रकट कराना होगा वह स्वयं आकर के तुम्हें दर्शित करायेंगे, बस उसी को लिपिबद्ध कर देना।" तो नाभाजी महाराज ने जिन-जिन भक्तों के चरित्र गाये हैं श्रीभक्तमाल जी में, ये उन्होंने अपने किसी कल्पना से नहीं गाये, भक्तों ने साक्षात् प्रकट होकर अपना चरित्र प्रकट कराया है। इसका प्रमाण देखो - हरिवंश सम्प्रदाय (राधावल्लभ सम्प्रदाय) में राधा प्रधान उपासना है। जब नाभाजी महाराज श्रीहित हरिवंश महाप्रभुजी का चरित्र लिखने बैठे तो उनको ध्यान में कुछ नहीं आया, मन बहुत घबड़ा गया कि इनका चरित्र कैसे लिखें ? तब गुरुदेव ने आज्ञा दिया कि ये श्रीजी के उपासक हैं, बिना श्रीजी का ध्यान किये इनका चरित्र नहीं लिख सकते हो। तब वहाँ नाभाजी महाराज ने राधारानी का ध्यान किया और एक पद गाया – "वन्दौ राधिका पद पद्म।" मैं राधारानी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। श्रीजी ऐसी कृपा करें कि अपने उपासकों का चरित्र मेरे हृदय में प्रकट करावें और मैं उनके चरित्र लिखने में समर्थ हो सकूँ। जब श्रीजी की उपासना की है नाभा जी ने, तब वे राधा प्रधान रसिक आचार्यों का चरित्र लिख पाए हैं। तो भक्तमाल के जितने भी भक्त-चरित्र हैं, ये चरित्र किसी कल्पना के या मन से बनाये हुए चरित्र नहीं हैं। वहाँ उन भक्तों ने स्वयं जैसा स्वरूप अपना प्रकट कराया है, ग्रन्थकार श्रीनाभाजी ने उसी भाव से भावित होकर उनके चरित्रों को लिखा है। इसलिए 'नहिं पाउँ भक्ति दाँव को।' भक्ति का दाँव (रहस्य) पाना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं है, ऐसा कहकर नाभाजी ने स्पष्ट मना कर दिया लेकिन गुरु-कृपा से जिन-जिन भक्तों ने अपने-अपने चरित्र प्रकट कराए, उन-उन चरित्रों को नाभाजी ने लिखा है। भक्तियोग में बहुत प्रकार की विभिन्नता है। एक ओर भक्त धामवास चाहता है, निरंतर धाम में रहना चाहता है। श्रीव्यासजी महाराज का एक प्रसिद्ध पद है – वृन्दावन में मंजुल मरिबो।

जीवन मुक्त सबै ब्रजवासी, पद रज सों हित करिबो॥

धाम में आकर चाहे मर ही जाओ एक तो यह भाव है। दूसरी ओर देखें भक्तमाल ग्रन्थ में, एक भक्त हुए हैं - भगवंत मुदितजी के पिता श्रीहरिदास जी महाराज। ब्रजभूमि से इनको बहुत प्रेम था। इनका जब शरीर छूटने का समय आया तो इनके पुत्र सोचने लगे कि पिताजी ने जन्मभर ब्रज की भक्ति की है, अच्छा हो कि ब्रज में इनका शरीर छूटे, तो जैसे-तैसे उनको मरणासन्न स्थिति में आगरा से ब्रजभूमि में लाने की तैयारियाँ हुईं और ले ही आये। आधे मार्ग में जब पहुँच गये तो अचानक मरणासन्न स्थिति में हरिदासजी को होश

हुआ, उन्होंने पूछा – 'अरे ! तुमलोग मुझे कहाँ ले जा रहे हो, मैं तो मरण शैय्या पर पड़ा हुआ हूँ।' उनके बेटों ने कहा – 'पिताजी ! आपने जन्मभर धाम-महिमा को गाया है, हमारी इच्छा है कि मरते समय आपको ब्रज-रज मिल जाए।' यह सुनकर उनको मन में इतना कष्ट हुआ और अपने पुत्रों को फटकारा – "तुम मूर्ख हो, पागल हो। अरे ! राधारानी-श्यामसुंदर के नित्यविहार का लीलास्थल है ब्रजभूमि, वहाँ मेरे इस मल-मूत्र के हांड़ी को जलाओगे; तो लाल-ललना को नित्य विहार में दुर्गन्ध पहुंचेगी, जिससे लीला में बहुत बड़ी बाधा होगी। ले जाओ मेरे इस शरीर को दुबारा, ब्रज में शरीर छोड़ने योग्य इस शरीर की सामर्थ्य नहीं है।" ब्रज में प्राण नहीं छोंड़े तुरंत उनको फिर से आगरा ले जाया गया, वहाँ प्राण छोड़े।

ऐसी ही भावनाओं से भावित एक दूसरा आँखों देखा चरित्र है- हमारे पूज्य बाबा महाराज बताते हैं कि जब वे नए-नए ब्रज में आये थे तो गह्वरवन में एक संत रहते थे पंडित हरिशचन्द्र जी महाराज। वह गह्वरवन में निवास करते थे लेकिन शरीर की क्रिया (मल-मूत्र त्याग आदि) करने के लिए बाहर दूर जाकर दोहिनी कुण्ड से आगे जाकर शरीर की दैनिक क्रिया करते थे, क्योंकि गह्वरवन तो श्रीराधारानी की वाटिका है, ये कोई गन्दगी फैलाने योग्य स्थान नहीं है, इसलिए बहुत दूर जाकर शरीर की क्रिया करते थे। ये पूज्य बाबा महाराज की आँखों देखी घटना है।

अब कितने प्रकार का भक्तियोग हो गया स्वयं विचार करो। इसलिए भक्तियोगो बहुविधो... अपनी-अपनी सब भक्तों की भावना व भावनाओं की निष्ठा और पराकाष्ठा है। इसको सामान्य बुद्धि से समझा नहीं जा सकता। इसलिए कपिल भगवान् ने कह दिया - माताजी ! भक्तियोग बहुत प्रकार का है, इसका कोई पारावार नहीं है लेकिन फिर भी चार प्रकार का जो कहा है - एक तामसी भक्ति, एक राजसी भक्ति, एक सात्विकी भक्ति और एक है – गुणातीत भक्ति। अब समझो ये बहुत गंभीर सिद्धांत है समझने योग्य। हम स्वयं समझ लें कि हमारा साधन कैसा बन रहा है ? तामसी हो रहा है या राजसी हो रहा है या सात्विकी। ये बार-बार आकर कोई समझायेगा नहीं, ये सूत्र हैं, इनको यदि रट लें, सदा स्मरण में रखें तो सर्वदा अपनी स्थिति को हमलोग पहिचान सकते हैं। तामसी अनुष्ठान क्या है ? हमारा जप, तप, व्रत आदि अनुष्ठान तामसी तो नहीं हो रहा है। कैसे पहचानें ? तो कपिल भगवान् सूत्र बता रहे हैं –

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः॥

(भागवत ३/२९/८)

जिस भक्ति में हिंसा हो, हिंसा का मतलब केवल किसी का क़त्ल करना ही नहीं होता, मन से भी हिंसा होती है, किसी के प्रति दुर्भाव आ गया तो मानसी हिंसा हो गई। वाणी से किसी को दुर्वचन कह दिया तो हिंसा हो गई है, जहाँ हिंसा की वृत्ति अभी चित्त से नहीं गई। दम्भ - बहुत प्रदर्शन का भाव है, मात्सर्य - किसी की प्रगति को न सह पाना और क्रोध है, भेदभाव है; ये भाव जहाँ भी हैं तो फिर आप चाहे जितना ऊँचा अनुष्ठान कर लीजिये वह सब साधन तामसी हो जायेगा। तामसी से श्रेष्ठ राजसी साधन होता है। राजसी साधन की क्या पहचान है ? हमारा व्रत राजसी हो रहा है या हमारी भक्ति राजसी हो रही है, इसकी पहिचान है –

विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः॥

(भागवत ३/२९/९)

हम खूब भजन-कीर्तन करें, खूब माला जपें, खूब व्रत करें लेकिन मन में यश, ऐश्वर्य पाने या धंधा-व्यापार बढ़ाने की इच्छा है और भेदबुद्धि बनी हुई है तो सब व्रत, अनुष्ठान राजसी हो जाएगा। राजसी से श्रेष्ठ सात्विकी अनुष्ठान है। सात्त्विकी भक्ति क्या है ?

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः॥

(भागवत ३/२९/१०)

सद्गति पाने की इच्छा से, लोक-परलोक सुधारने की इच्छा से, अपने पापों को नष्ट करने की इच्छा से जो साधन किया जा रहा है, वह सात्त्विक साधन है। जिस भक्ति में कोई भी हेतु (किसी भी प्रकार की इच्छा) नहीं है, उसे निर्गुणा (अहैतुकी) भक्ति कहते हैं।

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

(भागवत ३/२९/१२)

जिसमें कोई भी हेतु या कामना या स्वार्थ नहीं है, वह गुणातीत साधन है, वह व्रत, दान, कथा-श्रवण, नाम-संकीर्तन भी गुणातीत (निर्गुण) है जो केवल श्रीठाकुरजी के निमित्त से किया जाता है, अन्य कारणों से नहीं। किसी भी प्रकार की कामना न हो, यहाँ तक कि न भगवद्धाम जाने की इच्छा हो, न भगवान् के निकट रहने की इच्छा हो, न भगवान् के जैसी प्रभुता पाने की इच्छा हो और न भगवान् के जैसे स्वरूप की पाने की इच्छा हो, ऐसी निष्काम स्थिति में जो भी साधन होगा वह गुणातीत साधन होगा। अब हम स्वयं विचार कर सकते हैं कि हमारे साधन तामसी, राजसी, सात्त्विक होते हैं या गुणातीत होते हैं। गुणातीत स्थिति तो बहुत ऊँची बात है, अभी तो हमारे साधन तामसी, राजसी ही होते हैं क्योंकि इनके पीछे कहीं न कहीं कोई हेतु छिपा रहता है, ऐसे साधन निर्गुण स्थिति के नहीं बन पाते हैं। कपिल भगवान् कह रहे हैं कि निष्काम भक्त की तो ऐसी स्थिति हो जाती है कि भगवान् देते हैं, फिर भी भक्त लेना नहीं चाहता है। ऐसी स्थितियाँ हुई हैं महापुरुषों के सामने, जैसे - श्रीकुम्भनदासजी की रहनी, रांका-बाँका का चरित्र।

रांका-बाँका बहुत ही निष्किंचन भक्त थे। एकबार नामदेवजी ने भगवान् से कहा कि हे प्रभु ! वैसे तो आप बड़े दीनबन्धु, दयासिन्धु

बनते हो और आपसे अपने भक्तों का दुःख इतनी आसानी से देखा जाता है। अरे ! एकबार इनको (भक्त रांका-बाँका को) इतना दे दो कि कहीं माँगने-जाँचने की जरूरत ही नहीं पड़े । भगवान् ने नामदेवजी से कहा है – "अरे नामा ! मैं तो दे-दे कर हार गया, ये लेते कहाँ हैं ?" (नामदेवजी बहुत मुँहलगे भक्त हैं भगवान् के, जो भी मन में आता है तुरन्त कह देते हैं भगवान् से ।) नामदेवजी बोले – "आपको देना कहाँ आता है, आप तो अपना बचाव देखते हैं। अब हम सिखाते हैं आपको देना, ऐसे दिया करो।" भगवान् बोले – "कैसे दें ?" नामदेव ने कहा – "जिस जंगल से रांका- बांका जाते हैं लकड़ी बीनते हुए, उस जंगल में सोने की मोहरों की थैली रख दो ।" ठाकुरजी ने ऐसा ही किया और नामदेवजी के साथ एक पेड़ की आड़ में छिप गये। अब रांकाजी जब वहाँ पहुँचे तो मार्ग के बीच में सोने की मोहरों से भरी थैली को देखा, पीछे-पीछे उनकी स्त्री आ रही थी तो वे सोचने लगे कि सोने के प्रति माताओं का विशेष आकर्षण होता है, कहीं ऐसा न हो कि वह (बाँका) इस स्वर्ण की थैली को देख ले और भजन-साधन छूट जाए, इस स्वर्ण को लेने का लोभ जाग जाए । ऐसा अपने मन में विचार करके रांका उस थैली को धूल से ढकने लगे, पीछे से उनकी स्त्री आयी और बोली – "नाथ ! ये आप क्या कर रहे हैं।" रांका बोले – "देवी ! ये सोने का दर्शन ठीक नहीं है तो तुम्हारी दृष्टि से बचाने के लिए इसको धूल से ढक रहा हूँ।" तो इनकी स्त्री (बाँका) बोली – "आपको इतना समय बर्बाद कर धूल को धूल से ढकने की क्या जरूरत है ?" रांका भक्त के नेत्र खुल गये और सोचने लगे कि मुझसे श्रेष्ठ तो इसकी स्थिति है, मेरी दृष्टि में तो अभी सोना और मिट्टी अलग-अलग हैं लेकिन इसकी दृष्टि में तो "समलोष्टाश्मकाञ्चनः" सोने का पिंड और एक मिट्टी का पिंड दोनों बराबर हैं। रांका भक्त बोले – "मैं तो सच में रंक ही रह गया लेकिन तू तो बांका हो गई।" तभी से रांका-बांका नाम प्रसिद्ध हो गया।

इधर भगवान् ने कहा – "कहो नामदेव ! तुम बहुत कहते थे कि ले लेंगे, क्या कुछ लिया ?" नामदेवजी ने कहा – "गलती हमारी थी, अरे ! भक्त को सोना से क्या लेना-देना। सोना मत दीजिये, अब कुछ और दे दीजिए क्योंकि हे प्रभु ! ये भक्त तो इतना निष्किंचन है कि उतनी ही लकड़ी जंगल से बीनता है जितनी लकड़ियों के बीनने से एक दिन के भोजन की व्यवस्था हो जाए। दूसरे दिन की कोई चिन्ता परवाह नहीं है । तो आज आप और हम मिलकर के इनके लिए इतनी लकड़ी इकट्ठा कर दें कि १०-२० दिन के लिए भोजन का काम चलता रहे।" तो श्रीठाकुरजी ने नामदेवजी के साथ लकड़ी बीन-बीनकर जगह-जगह पर गट्ठर बना दिए। अब रांकाजी जब जंगल में पहुँचे तो उन्होंने अपनी स्त्री से कहा कि देवी ! आज एक भी लकड़ी में हाथ मत लगाना, ऐसा लगता है कि इस जंगल में हमसे भी ज्यादा कोई गरीब आ गया है, उसको हमसे भी अधिक लकड़ियों की आवश्यकता है । आज लकड़ियों को छूना भी मत, उसकी आवश्यकता को पूर्ण हो जाने दो। हमलोग दो-चार दिन बाद फिर कहीं लकड़ी बीन लेंगे और वैसे भी आज सोने का दर्शन हुआ था तो सोने का दर्शन भी एक दोष होता है इसलिए इसका प्रायश्चित भी जरूरी है, अतः प्रायश्चित के रूप में आज हमलोग व्रत रखेंगे और ऐसा सोचकर घर आ गये।

अब इधर भगवान् ने कहा कि कहो नामदेवजी ! इनको और भूखा रख दिया। पहले तो कम से कम दो रोटी का इंतजाम हो जाता था लेकिन आपने तो देने के चक्कर में और भूखा मार दिया इनको। नामदेवजी महाराज बड़े हठीले भक्त हैं और वे भगवान् से बोले – "प्रभो ! जब तक ये कुछ ले नहीं लेंगे, मेरे मन को चैन नहीं होगा। कोई बात नहीं है इनके घर ही चलकर देखते हैं।" तो नामदेवजी और ठाकुरजी दोनों साथ में उनके घर पहुँचे। जैसे ही रांकाजी ने दरवाजा खोला सामने नामदेवजी के साथ प्रभु को देखकर साष्टांग चरणों में गिर पड़े। अब भगवान् सोच रहे हैं कि ये लेंगे नहीं और नामदेव जी दिए बिना मानेगे नहीं, दोनों अपने-अपने हठ के बहुत पक्के हैं। तो ठाकुरजी ने बीच का रास्ता निकाल लिया। प्रभु सोचने लगे कि इनको ऐसी वस्तु दी जाए जिससे ये मना भी न कर पाएँ, नामदेवजी की इच्छा भी पूरी हो जाए और रांकाजी की इच्छा भी रह जाए। तो श्रीठाकुरजी ने रांका भक्त को अपना प्रसादी रेशमी पीताम्बर दिया तो ये ऐसी वस्तु थी कि रांकाजी उसको लेने से इन्कार नहीं कर पाये। उन्होंने उस प्रसादी वस्त्र को अपने हृदय से और मस्तक से लगाया। नामदेव जी ने कहा – "चलो, प्रभु ! अब हुई हमारी छुट्टी; इन्होंने कुछ न कुछ तो लिया अगर आपसे ये नहीं लेते तो मैं भी अपना हठ पूरा किए बिना नहीं मानता।" तो ये वह स्थिति है जहाँ 'दीयमानं न गृह्णन्ति' माँगना-जाँचना तो बहुत दूर, जहाँ भगवान् दे रहे हैं तो भी नहीं ले रहे हैं। तो इन्हें क्या चाहिए ? "विना मत्सेवनं जनाः।" ये भगवत्सेवा और भगवज्जनों की सेवा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते हैं, कोई इच्छा इनके मन में नहीं आती। ऐसी भक्ति ही निर्गुणा भक्ति होती है, जहाँ मन में ये भाव आ जाए – दीनबंधु रे दीनानाथ रे, तोहे छोड़ और कछु नाहिं माँगू रे। तू ही मेरा सोना-चांदी, तू ही मेरा हीरा- मोती, तू ही मेरा लाल रत्न तोहि माँगू रे ।। तू ही बन्धु माता-पिता, तोहि सो सब नाता, तू ही मेरा प्राण जीवन तोहि माँगू रे। दीनबंधु रे ..... भक्तों का काम माँगने-जाँचने का नहीं है। एक पद है व्यासजी महाराज का –

सुने न देखे भगत भिखारी।
तिनके दाम चाम को लोभ न, जिनके कुञ्जबिहारी।
व्यास आस सागर में डूबे, आई भक्ति बिसारी ।।

भिखारियों का काम माँगने-जाँचने का है, भक्तों का नहीं। भगवान् से भी जो कुछ नहीं चाहता, वह अन्यों से क्या चाहेगा ? और ऐसे भक्तों की भक्ति को ही निर्गुणा भक्ति कहा गया है। ये ही निर्गुणा भक्ति का लक्षण है कि जहाँ कोई हेतु, कोई निमित्त, कोई कामना

ठाकुरजी से न हो। कपिल भगवान् ने मैया देवहूतिजी की जिज्ञासा पर उन्हें सात्त्विक, राजस, तामस और गुणातीत भक्ति का लक्षण और गुणातीत भक्ति के स्वरूप के विषय में अवगत कराया है। आखिर में मैया देवहूतिजी ने दो श्लोक कहे हैं जो नाम-संकीर्तन की महिमा को प्रकाशित करने वाले हैं –

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(भागवत ३/३३/६,७)

देवहूती मैया कह रही हैं - आपने अष्टांगयोग सुनाया, आपने भक्तियोग सुनाया, आपने सांख्ययोग सुनाया परन्तु सम्पूर्ण सम्वाद का सार हे प्रभो ! मुझे तो केवल ये ही समझ में आया है कि जिसने भगवान् का नाम-संकीर्तन कर लिया, 'तेपुस्तपस्ते' उनके सब तप हो गए, 'जुहुवुः' उनके सब यज्ञ हो गए, 'सस्नुः' सब तीर्थों का स्नान हो गया, 'आर्या' उनके सब सदाचरण हो गये 'यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।' जिनकी जिह्वा के अग्र भाग पर सदा आपका नाम विराजता है, उसके सब अनुष्ठान, सब साधन हो गये। तो कपिल देवहूति सम्पूर्ण संवाद का सार भगवान् का नाम-संकीर्तन है। केवल इस उपाख्यान की बात नहीं है, भागवतजी के सभी प्रकरणों का सारांश, सबकी परिणिति भगवन्नाम-संकीर्तन में ही है। इसलिए सम्पूर्ण भागवत का सार भगवन्नाम-संकीर्तन ही है।

.....

कृष्णप्रेमिका करमैतीबाई

(श्रीबाबामहाराज के एकादशी सत्संग (२४/५/२००६) से संग्रहीत)

संकलनकर्त्री - व्यासाचार्या श्रीजी शर्मा, मान मंदिर

एक भक्ता हुयी हैं, जिनका नाम करमैती बाई था, इनकी कथा भक्तमाल में आती है। बड़े-बड़े संतों-महापुरुषों ने इनका चरित्र गाया है। ये खँडेला (राजस्थान) की रहने वाली थीं, जो पहले रियासत थी। प्राचीन काल में छोटी-छोटी रियासतों के राजा होते थे, ऐसे ही वहाँ के जो राजा थे, उनके गुरु थे श्रीपरशुराम जी। ये राजगुरु परशुराम जी की पुत्री थीं और बचपन में ही इनका विवाह हो गया था। करमैतीबाई पूर्व जन्म की भक्त थीं।

भक्ति एक ऐसी कमाई है जो कभी नष्ट नहीं होती है, ये धन-संपत्ति तो नष्ट हो जायेगी, ये जवानी भी नष्ट हो जायेगी अर्थात् बुढ़ापे में बदल जायेगी लेकिन भगवान् की भक्ति कभी नष्ट नहीं होती है। जो पूर्व जन्म का भक्त होता है वह बचपन से भक्ति करता है–ये उसकी पहचान है।

करमैतीजी भी बचपन से ही भगवान् की भक्ति करती थीं और श्रीकृष्ण की मानसी सेवा में ऐसी तन्मय हो जाती थीं कि दिनभर एक आसन में बैठी रहती थीं। इनकी माँ भोजन के लिए बुलाती तो ये भजन में तल्लीन रहती थीं, इनको खान-पान की कोई सुध नहीं रहती थी। इनके पिता परशुराम जी जब आते और कहते – चल लाली, भोजन कर ले, तब ये जातीं।

करमैती का विवाह बचपन में ही हो गया था, जब करमैती बड़ी हुईं तो गौने (जिसमें ससुराल पक्ष वाले लड़की को लेने आते हैं) का समय आया और बहुत बड़ी बारात आयी इनको ले जाने के लिए। बेटी करमैती को जेवरातों से सजाया गया तो इन्होंने अपने पिता से पूछा – पिताजी! ये इतनी भीड़-भाड़ क्यों है?

पिता ने कहा – बेटी! तेरा गौना है।

ये गौना क्या होता है – करमैती ने साश्चर्य पूछा।

पिता ने कहा – अब तू अपने पति के घर जायेगी और वहाँ तेरा गृहस्थ में प्रवेश होगा।

वे समझ गईं कि अब मैं संसार में फँस जाऊँगी।

इनके बारे में श्रीनाभा जी ने श्रीभक्तमाल, छप्पय १६० में लिखा है–

संसार स्वाद सुख बाँत करि फेरि नहीं तिन तन चही।

इन्होने भोगों को वमन की तरह छोड़ दिया था अर्थात् फिर उनकी तरफ दृष्टिपात भी नहीं किया, जैसे कोई भी व्यक्ति उल्टी करके फिर उसकी तरफ नहीं देखता है। इस तरह से इन्होंने बचपन से ही भोग छोड़ दिए थे और यह निश्चय कर लिया था कि यह शरीर अब कृष्ण का है, अब यह विषय-भोगों को नहीं भोगेगा। इसे कहते हैं भक्ति। नाभा जी आगे लिखते हैं –

कठिन काल कलयुग्ग में करमैती निकलंक रही।

'निकलंक' माने भोग का एक धब्बा भी नहीं लगा शरीर पर; जबकि ये घोर कलिकाल है, यहाँ हर आदमी बचपन से भोग भोगना सीख जाता है लेकिन करमैतीबाई ऐसे कलिकाल में भी पवित्र रहीं।

नश्वर पति रति त्यागि कृष्णपद सों रति जोरी।
सबै जगत की फाँसि तरकि तिनुका ज्यौं तोरी॥

जैसे तिनका तोड़ने में कोई परिश्रम नहीं लगता, वैसे ही करमैती जी ने तिनके की तरह सभी आसक्तियों की जंजीरों को तोड़ डाला और

श्रीकृष्ण से सच्चा प्रेम कर उन्हें प्राप्त किया इसी कलियुग में। इनके पिता ने जब इनसे कहा कि पुत्री! कल तेरी बिदाई है, इसलिए आज ये भीड़ इकट्ठी हुई है। पिता की बात सुनकर वे सोचने लगीं कि मुझे कैसे इन बन्धनों से छुटकारा मिले? अन्त में इन्होंने घर से भागने का निश्चय कर लिया, ठण्ड का समय था, अर्धरात्रि में जब सब सो गए तब ये घर से श्रीकृष्ण को हृदय में बसाकर निकल पड़ीं, बाहर अँधेरी रात थी, कोई इन्हें देख नहीं पाया। राजस्थान में अधिकांश भूमि रेतीली होती है, जहाँ कोसों तक कोई पेड़ नहीं, कोई फसल नहीं केवल रेत ही रेत होती है, इसलिए वहाँ पैदल चलना भी बड़ा कठिन होता है, केवल ऊँट ही चल पाते हैं। ये रातभर भागती रहीं उसी रेतीली भूमि पर। जब प्रातःकाल हुआ, इनके घर में लोग जगे तो पता चला कि करमैती घर पर नहीं है, जब इनके माता-पिता को पता चला तो वे बड़े दुःखी हुए और समझ गए कि उस लड़की का मन दिन-रात भजन में था, वह गृहस्थ जीवन में नहीं फँसना चाहती थी इसीलिए घर छोड़कर भाग गयी। इनके पिता कलंक लगने के भय से अपने यजमान राजा के पास सहायता लेने गए, इतने सबेरे पुरोहित जी को आता देखकर राजा ने साश्चर्य पूछा – "महाराज! आज सबेरे-सबेरे आपका आगमन कैसे हुआ?" उन्होंने राजा को सारी घटना विस्तार से बताई कि हमारी लड़की घर छोड़कर भाग गयी है। राजा ने पूछा – क्यों? उन्होंने बताया कि उसका मन श्रीकृष्ण की भक्ति करने में लगता था, उसको गृहस्थ जीवन अच्छा नहीं लगा और कोई कारण नहीं है, आप अपने सिपाहियों को भेज दीजिए उसको ढूँढने के लिए अन्यथा हमारी समाज में नाक कट जायेगी क्योंकि घर पर दूल्हा बैठा है बारातियों सहित और सभी रिश्तेदार बैठे हैं। राजा ने कहा – आप चिन्ता मत कीजिए, वह रेगिस्तान में ज्यादा दूर नहीं भाग पाई होगी । हम अभी अपने तीव्रगामी घुड़सवारों को उसकी खोज में भेजते हैं।

राजा की आज्ञा से सिपाही करमैती को खोजने चल पड़े और अल्प समय में ही करमैती के समीप पहुँच गए। घोड़ों की टापों की आवाज सुनकर वह समझ गयी कि कोई मुझे पकड़ने के लिए आ रहा है, वह तुरन्त वहीं छिपने की जगह खोजने लगी किन्तु वहाँ छिपने की कोई सुरक्षित जगह नहीं मिली क्योंकि वहाँ तो रेगिस्तान का खुला मैदान था, उसी समय वहीं पास में पड़े एक मृत ऊँट के ऊपर करमैती की दृष्टि पड़ी, उसमें से बहुत दुर्गन्ध आ रही थी, ऊँट के पेट को जानवरों ने खा लिया था। करमैती हिम्मत करके उस मरे हुए सड़े-गले ऊँट के पेट में घुस गयीं और सिकुड़कर बैठ गयीं उसकी खाल को ओढ़कर । उन्होंने सोच लिया था अब यही दुर्गन्ध हमें संसार में फँसने से बचायेगी, वहाँ बैठी-बैठी वे कृष्ण नाम लेने लगीं और प्रार्थना करने लगीं कि हे गोपाल! मैं वृन्दावन आना चाहती हूँ, तू कृपा कर और मुझे वृन्दावन पहुँचा दे। सिपाही जब वहाँ पहुँचे तो उस दुर्गन्ध के कारण ऊँट के समीप न जाकर दूर से ही चले गए, किसी ने यह सोचा भी नहीं कि वह ऊँट के पेट में भी घुस सकती है। सिपाही वहीं आस-पास उन्हें खोजते रहे और वे तीन दिन तक भूखी-प्यासी उसी सड़े हुए ऊँट के पेट में छुपी रहीं। जब उनका पता नहीं लगा तो सिपाही लौटकर चले गए और जाकर राजा को बता दिया कि हमने तो दस-पन्द्रह कोस तक सभी जगह ढूँढ लिया किन्तु वह नहीं मिली या तो वो किसी कुँए में कूदकर मर गई अन्यथा ऐसे रेगिस्तान में कोई लड़की कैसे भाग सकती है।

इधर करमैती तीन दिन के बाद उस ऊँट के पेट से बाहर निकलीं और वहाँ से फिर भागीं, कुछ दूर जाने पर उन्हें कुछ तीर्थ यात्री मिले, वे लोग गंगा स्नान करने के लिए जा रहे थे, करमैती बाई भी इनके साथ चल पड़ीं कीर्तन करते हुए, जब यात्रियों का इनकी ओर ध्यान आकर्षित हुआ तो उन्होंने इनकी वेष-भूषा देखकर (बड़े कीमती-कीमती आभूषणों से सुसज्जित थीं क्योंकि राजपुरोहित की लड़की थी और विवाह के ही अवसर पर भागी थीं) पूछा कि बेटी! तू कौन है और तुझे कहाँ जाना है? उन्होंने कहा कि जहाँ आप लोग जा रहे हैं वहीं मैं भी जा रही हूँ, तो इस तरह उन यात्रियों के साथ में ये शूकरक्षेत्र गंगा जी के किनारे तक आयीं और वहाँ आकर इन्होंने स्नान किया और अपने सभी कीमती वस्त्राभूषण वहीं दान कर दिए, किसी स्त्री से एक फटी सी साड़ी ले ली और उसे ही पहन लिया और सोचने लग गयीं कि अब मुझे कोई पहचान नहीं पायेगा। फिर वहाँ से ये मार्ग पूछते हुए अपने प्राणप्यारे की लीलाभूमि श्रीधामवृन्दावन के लिए चल पड़ीं। अकेले जंगली रास्ते से होती हुईं वृन्दावन पहुँचीं, उस समय वृन्दावन में गहन जंगल था, जंगली जानवर भी थे, इसलिए संत-भक्तों के अलावा वहाँ कोई रहता नहीं था, तो करमैती निर्भय होकर वहीं यमुना किनारे एक कुञ्ज में रहने लगीं, खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी तो फल-पत्ते आदि का आहार करके, यमुना जल का पान कर दिन-रात श्रीकृष्ण का नाम ले लेकर उन्हें बुलाती रहती थीं – अस्तु इस तरह से वो वृन्दावन में रहने लगीं, जो मालिनें वृन्दावन से आती थीं, उन्होंने देखा एक जवान लड़की दिन भर गोपाल को बुलाती है। साधुओं ने भी उनके बारे में सुना, अच्छे-अच्छे साधु थे उन्होंने देखा जवान लड़की है, शरीर में ब्रजरज लगी हुयी है और यमुना जी के किनारे रो रही है, गोपाल जी को बुला रही है।

जग को छोड़ तेरे दर आई, हे गोपाल रे गोपाल .....
राधे...राधे....अपनी शरण लगाओ।
जग को छोड़ तेरे दर आई .....
अरे गोपाल तेरे लिए मैं,
सड़े ऊंट के उदर में बैठी, गन्ध सो न घबराई।
अपनी शरण लगाओ, जग को छोड़ तेरे दर आई
मैं सड़े ऊंट की गन्ध से नहीं घबराई, मैं घबराती हूँ विषय भोग से
घबराई मैं विषय भोग से, सबको ले भरमाई।

हे गोपाल, हम लोग जनम-जनम यही भोग भोगते हैं , कुत्ता बनते हैं, कुतिया से लग पड़ते हैं, गधा बनते हैं तो गधी से भोग भोगते हैं । ये मनुष्य शरीर भोग के लिए नहीं है, भगवान् के लिए है ।

जनम-जनम विषयों में भटकी, तेरी लयी शरनाई ।
अपनी शरण लगाओ, जग को छोड़ तेरे दर आई ॥

हे नाथ! मेरी लज्जा रख लो, जैसे द्रोपदी की रखी थी, उसको नग्न नहीं होने दिया ।

करमैती की लाज रखो हरि, राधावर यदुराई ।
जग को छोड़ तेरे दर आई ।

वो गा रही थी और उसके बारे में सब जगह चर्चा फ़ैल गयी कि एक जवान लड़की है, वह रात भर गोपाल जी को पुकारती है ।

इधर उसके पिता परशुराम जी करमैती की तलाश में घर से चल पड़े, उन्हें ऐसा विश्वास था कि करमैती मरी नहीं है, उसका श्रीकृष्ण में प्रेम था इसलिए वह भागकर निश्चित वृन्दावन गई होगी, तो वे ब्रज-वृन्दावन के लिए चल दिए ।

मथुरा की कुछ मालिनें वृन्दावन पुष्प लेने के लिए जाती थीं, तो उन्होंने करमैती को देखा कि एक जवान लड़की यमुना किनारे ब्रजरज में पड़ी है 'गोपाल! गोपाल! ' की टेर लगा रही है, शरीर पर मलिन वस्त्र हैं, उन मालिनों ने लौटकर मथुरा में पण्डे-पुजारियों को उस लड़की के बारे में बताया । वे सभी वृन्दावन आये उसका दर्शन करने के लिए, बड़ी मुश्किल से उन्हें यमुना किनारे ब्रह्मकुण्ड पर एक सघन कुञ्ज में करमैती के दर्शन हुए ।

कुछ दिन बाद इनके पिता मथुरा पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूछताछ प्रारम्भ की करमैती के बारे में तो उन पण्डों ने बताया कि हाँ एक जवान लड़की वृन्दावन में यमुना किनारे रहती है तो वहाँ जाकर देखो हो सकता है वह तुम्हारी ही लड़की हो, वे तुरन्त एक-दो पण्डों को साथ लेकर वहीं पहुँचे जहाँ करमैती रहती थी, वन की सघनता के कारण वृक्षों पर चढ़-चढ़कर उसे ढूँढने लगे, वहीं समीप में उन्हें शब्द सुनाई पड़ा कि कोई गोपाल, गोपाल पुकार रहा है, वे पेड़ से उतरकर गए तो देखा कि तपस्वियों जैसी वेश-भूषा में करमैती बैठी है, सारे शरीर में ब्रजरज लगी है, केश जटाओं में परिणित हो गए हैं, उसे देखकर लिपट गए बेटी! बेटी कहते हुए । करमैती ने भी पिता को देखकर पहचान लिया, वे रोने लग गए और बोले – बेटी! वहाँ तो सभी लोग समझ रहे हैं कि तू मर गयी है, परन्तु तू तो प्रभु की कृपा से जीवित है, ये देखकर के हमें बड़ा आनंद मिला, यद्यपि बेटी! तू इस तरह गौने के अवसर पर घर से भागी तो हमें बड़ा कलंक लगा, हमारी बड़ी बेईज्जती हुई किन्तु जाने दो, कोई बात नहीं, तू जिन्दा है, हम इसी से बड़े खुश हैं । बेटी! अब तू घर चल, यदि तू ससुराल नहीं जाना चाहती तो मत जा, हम वचन देते हैं कि अब तेरा गौना नहीं होगा, वहीं हम तेरे लिए कुटी बना देगें, तू वहीं दिन-रात अपने गोपाल जी की सेवा करना, उनका भजन करना, तेरे साथ हम सब लोग भी भक्ति करेगें, जिससे हम सबका भी उद्धार हो जाएगा । करमैती बोली कि पिताजी ये शरीर तो मैंने अब वृन्दावन बिहारी को दे दिया है, अब ये शरीर खंडेला वापस नहीं जाएगा, मर भले ही जाऊँगी किन्तु लौटकर वापस घर नहीं जाऊँगी । पिताजी बोले कि बेटी! तेरे बिना हम कैसे रहेंगे?

पिताजी ने कहा - बेटी, जब तू घर नहीं चलेगी, तूने संसार छोड़ दिया और मैं तेरा बाप होकर अब संसार को भोगूं तो बड़ी लज्जा की बात है, अब मैं भी यहीं वृन्दावन में ही मरूँगा, मैं भी लौटकर नहीं जाऊँगा ।

करमैती सोचने लगी कि इनको कैसे दूर करें, तो वे बोलीं – अच्छा पिताजी मैं तुम्हें ये मूर्ति दिए देती हूँ, यह मुझे प्राणों से प्यारी है, साक्षात् प्रभु ने यह मुझे दी थी, तुम इस मूर्ति को ले जाओ और वहाँ स्थापित करके इनकी सेवा करना, इसी में तुम्हें भगवान् के दर्शन मिलेंगे, अब तुम हठ नहीं करो, मैं जिस गोपाल के भरोसे निकली हूँ घर से, वही मेरी रक्षा कभी करेगा, अब मुझे मेरे गोपाल के भरोसे पर छोड़ दो, अब मेरी माँ, पिता, पति सब वही है । यदि अब भी आप नहीं मानोगे तो मैं फिर यमुनाजी में कूद जाऊँगी । पिता जी समझ गए कि ये वचन की बड़ी पक्की है, कहीं कुछ कर न बैठे तो वे मूर्ति लेकर लौटकर चले आये । (एक बार गोपाल-गोपाल पुकारते हुए विरहावेश में करमैती यमुना जी में कूद पड़ी थी, उसने सोचा कि जब प्रभु नहीं मिले तब इस शरीर को रख कर क्या करूंगी ? जब विरह सताता है भक्त को तो वह सोचता है कि मर जायें, प्राण दे दें, प्रभु क्यों नहीं मिले? जब यमुना में करमैती कूदी तो उसकी बहुत तेज धार थी, अगम पानी था तो श्याम सुन्दर ने आकर उसे पकड़ लिया । भगवान् मिलते हैं ऐसी लगन से, ऐसी लगन कहाँ है? ऐसी लगन नहीं है । साधु बन जाते हैं हमारे जैसे लोग और लड्डू-पेड़ा, पैसा-धेला में मर जाते हैं । भगवान् ने करमैती से कहा - तू मर मत, तुझे मेरे दर्शन मिल गए । करमैती ने कहा कि मैं आपके बिना कैसे जियूंगी तो गोपालजी ने उसे एक मूर्ति दिया और कहा कि इस मूर्ति में तुझे मेरे दर्शन हुआ करेंगे, तेरे जीने का ये सहारा है, आत्महत्या नहीं करनी चाहिए, ये शरीर तूने मुझे दिया है तो तुझे इसे समाप्त करने का क्या हक है ? गोपालजी करमैती को अपनी मूर्ति देकर चले गए । उस मूर्ति को वह छाती से लगाकर रखती थी, जब बहुत विकलता होती थी तो उस मूर्ति में श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन होते थे ।) जब करमैती के पिता जी ने घर लौटकर सारी घटना राजा साहब को सुनाई तो वे बोले कि पुरोहितजी, मैं भी उस देवी के दर्शन करने जाऊँगा, कुछ दिन पश्चात् राजा आया इनके दर्शन करने; उस समय करमैती जी यमुना जी किनारे खड़ी-खड़ी कृष्ण विरह में अश्रुपात कर रही थीं, वह उनकी प्रेमदशा देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा और उनसे आज्ञा माँगी कि देवी मुझे भी कुछ आज्ञा दीजिए, मैं भी आपकी कुछ सेवा करूँ, करमैती ने मना कर दिया फिर भी उनके

मना करने के वाद भी राजा ने वहीं ब्रह्मकुण्ड के समीप उनके रहने के लिए एक कुटिया बनवा दी, इस तरह करमैती जी जीवन-पर्यन्त वहीं रहीं और अन्त में सदा के लिए इसी ब्रज-वृन्दावन धाम में लीन हो गईं।

इस प्रकार करमैती जी ने समस्त नारी जाति को यह शिक्षा दी कि वे भोग से बचें, ये शरीर भगवान् का है, इसको प्रभु के ही भजन-सेवा में लगाएँ।

.....

भक्ति में प्रबल बाधक - भक्तापराध

(संत श्री बरसानाशरणजी, मानमन्दिर, गह्वरवन)

मनुष्य यदि भक्तापराध से बच जाए तो वह भक्तिमार्ग में अत्यधिक उन्नति करेगा, बड़ी तीव्रता से उसकी भक्ति चलेगी क्योंकि भक्तिमार्ग में जो सबसे बड़ा विघ्न है, वह है भक्तापराध।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २१८)

इसी को आदिपुराण में कहा गया है –

विष्णुभक्त कृतं द्रोहं निराकर्तुं न शक्नुयात्।
जनो जन्मशतोद्भूतैः सुकृतैर्विविधैरपि॥

'यदि किसी भगवद्भक्त का अपराध बन गया तो चाहे हजारों सत्कर्म कर लो किन्तु विविध सुकृतों के करने पर भी वह भक्तापराध नष्ट नहीं होता है।'

इसलिए भक्तापराध भक्ति का सबसे बड़ा कंटक (विघ्न) है। इससे प्रत्येक साधक को बचना चाहिए। कुछ लोग ऐसा समझ लेते हैं कि जो उच्च कोटि के भक्त हैं, उनका ही अपराध लगेगा, जो साधारण अर्थात् निम्न कोटि के भक्त हैं, यदि उनके प्रति अपराध बन भी जाए तो भक्तापराध नहीं लगेगा किन्तु ऐसा जो सोचते ये उनकी बहुत बड़ी भूल है। महापुरुष जन इस बात को जानते हैं कि भक्त चाहे उच्च कोटि का हो अथवा साधारण कोटि का, दोनों के प्रति समान अपराध लगता है। इसलिए श्रीबिहारिन देव जी ने कहा है –

भक्त साधारण के अपराधहिं कांपत डरनि हियो।

अस्तु साधारण भक्त के अपराध से भी डरना चाहिए।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी से एक बार कुछ कुलीन ग्रामवासियों ने पूछा था कि वैष्णव अर्थात् भक्त कौन है ? श्रीमन्महाप्रभु जी ने उत्तर में कहा था – **जाँर मुखे एक बार सुनि कृष्णनाम।**
सेई वैष्णव ताँर करिओ सम्मान॥

यही गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा –

तुलसी जाके मुखन सौं धोखेऊ निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम॥

छोटे से छोटे भक्त के अपराध से भी हानि होती है। इसका अनुभव संतों ने किया है।

श्रीरूप गोस्वामी जी श्रीराधारानी की मंजरी के अवतार थे, इतने ऊँचे महात्मा थे कि वह अहर्निश भजन में लगे रहते थे, उनसे तो भक्तापराध भी नहीं हुआ था अपितु भक्तापराधाभास मात्र हुआ था और केवल उसी के कारण उनके हृदय से युगल सरकार श्रीराधामाधव की लीलायें तिरोहित हो गयीं।

इसलिए श्रीमद्भागवत में कहा गया –

महद्विमानात् स्वकृताद्धि मदृङ्ग नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः॥

(श्रीमद्भागवत ५/१०/२५)

अथवा

शूलपाणि सम यदि भक्तनिन्दा करे।
भागवत-प्रमाणे तथापि शीघ्र मरे॥ (श्रीचैतन्यचरितामृत)

भगवान् शंकर की तरह भी यदि कोई सामर्थ्यवान है अगर वह भी भक्तापराध करता है तो उसका भी अतिशीघ्र विनाश हो जाएगा। इसलिए भक्तापराध से सबको बचना चाहिए। इसका अनुभव सबने किया है। स्वयं भगवान् शिव ने श्रीरामचरितमानस में कहा है –

इंद्र कुलिस समसूल विसाला। काल दंड हरि चक्र कराला॥
जो इनके मारा नहीं मरहिं। विप्र द्रोह पावक सो जरई॥

'मेरा त्रिशूल, इंद्र का वज्र, भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र, यमराज जी का पाश, ये सब अमोघ अस्त्र हैं। इनका वार व्यर्थ नहीं जाता है। लेकिन कोई इतना शक्तिशाली कि वह इन अमोघ अस्त्रों के वार से बच भी सकता है किन्तु भक्तापराध से वह भी नहीं बच सकता। इतना समर्थ पुरुष भी भक्तापराध के कारण नष्ट हो जाएगा।

भक्तापराध की शास्त्रों में वर्णित जो गुरुता है वह अतिश्योक्ति नहीं है अपितु अक्षरसः सत्य है।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥

(भागवत १०/४/४६)

जो भक्तों का अनादर करते हैं, उनका वह अपराध ही उनकी आयु, श्री, यश, धर्म व लौकि-पारलोक आदि को नष्ट कर देता है । यहाँ तक कि उनके कल्याण के सभी साधन भी नष्ट हो जाते हैं ।

प्रायः अधिकाँश लोग इतना ही समझते हैं कि किसी भक्त को पीड़ित करना ही अपराध है लेकिन केवल इतना ही अपराध नहीं है, स्कन्द पुराण बताया गया कि भक्तापराध छः प्रकार का होता है –

हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति ।
क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट् । ।

'भक्त को मारना, भक्त की निन्दा करना, भक्त से द्वेष करना, भक्त को आता देखकर उसका स्वागत न करना, भक्त पर क्रोध करना और भक्त को आया देखकर प्रसन्न नहीं होना' ये छः प्रकार से भक्तापराध होता है ।

इसलिए भक्त को मारना-पीटना तो आगे की बात है उसकी निंदा करना भी भक्तापराध है ।

साधु निंदा अति बुरी भूलि करो जिन कोय ।
जनम-जनम के सुकृत को पल में डारे धोय ।।

अनंत जन्मों से तुमने जो अच्छे कर्मों के द्वारा सुकृत एकत्रित किये, थोड़ी-सी भक्त निंदा की और वे सारे सुकृत जल जायेंगे। किसी भक्त से द्रोह (द्वेष) करना भी भक्तापराध है ।

जो इनसे बच जाता है उसकी गति भक्तिमार्ग में इस प्रकार से बढ़ती है जैसे सावन-भादों के महीने में नदियाँ का वेग समुद्र की ओर प्रवाहित होता है ।

.....

लाल-ललना का लीला-विहार

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (१/५/१९९८) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी मुकुंदप्रिया जी, मानमंदिर ,बरसाना

सबेरे ठाकुरजी, श्रीजी वृन्दावन की शोभा देखने के लिए जा रहे हैं और बसंत का समय है, चारों ओर पीले-पीले पुष्प खिले हुए हैं । सारा वृन्दावन पीला हो रहा है और श्रीजी इस प्रकार जा रहीं हैं कि मानो एक चमकता हुआ स्वर्णमय चम्पे का फूल उड़ा जा रहा है । (हमारे वैद्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि वसन्त ऋतु में प्रातःकाल जिसने वन की शोभा नहीं देखी और भ्रमण नहीं किया, वह वर्ष भर बीमार रहेगा । 'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' उन्होंने कहा कि सबसे बड़ी औषधि है - बसंतऋतु में जाकर के प्रातःकाल वनों के बीच में टहलो।) पुष्पमय वृन्दावन में मानो एक साक्षात् खिली हुई चम्पा की कली उड़ती हुई चली जा रही है, साथ में नीलकमल श्यामसुन्दर हैं । इस प्रकार के वनविहार का वर्णन रसिकों ने लिखा है कि साक्षात् श्रीलाड़लीजी इस तरह से जा रही हैं जैसे कोई पुष्पमयी आभा जा रही है और वह नीलकमल सुमन के साथ इस तरह से वृन्दावन में डोल रहीं हैं। फूल में आवाज नहीं होती है लेकिन इस चंपा की कली में नूपुरों की आवाज हो रही है । ऐसा लग रहा है, कोई स्वर्णिम चम्पा की एक पुष्पमयी छवि जा रही है और उसमें से नूपुरों के कंकड़ों की झंकार उठ रही है, ऐसी विचित्र शोभा वृन्दावन में हो रही है, उस समय जो श्रीजी का अंचल उड़ा था, उस वसनांचल की वायु को पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो गए थे । श्रीमहावाणीजी में एक बहुत सुन्दर पद है –

"**प्यारी जू फूली फूल फूल सों, रिमझिम-रिमझिम डोलै** ।"

फूलों से फूल रहीं हैं अथवा हृदय में जो उमंग है उससे फूल रहीं हैं, जो हृदय में बसंत के अनुराग की, प्रेम की जो उमंग आ रही है उससे प्रफुल्लित हुईं श्रीजी ऐसी जा रहीं हैं जैसे फूला हुआ गुब्बारा उड़ा जा रहा है, साथ में रसराज श्रीकृष्ण हैं, जिनके अंक में वे सुशोभित हो रहीं हैं। गलबइयां दे करके जब चलती हैं तो ऐसा लगता है मानो श्रीकृष्ण नीलमणि (मरकत मणि) की तरह हैं। मरकतमणि के महल के बीच में ऐसा लगता है कि कोई गोरे रंग की कोयल बोल रही है। कोयल तो काले रंग की होती है, नहीं-नहीं ये काली कोयल नहीं है । महल नीला है तो उस पर कोई गोरी कोयल बैठ कर बोल रही है । वन विहार में प्रातः काल का समय है । श्रीकिशोरीजी भैरवी की तान छेड़ रही हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि कोई गोरी कोयल नीलमणि के महल पर बैठ कर गा रही है । **"मरकत मणि के अहल महल में, कोकिल ज्यों कल बोलै ।"** प्रातःकाल का समय है, श्रीजी कुञ्ज भवन से चली हैं, बिखरे हुए बाल हैं, बड़े सुन्दर लग रहे हैं, गोरे-गोरे गालों पर लटूरियाँ लटक रहीं हैं तो ऐसा लगता है कि चाँद के चारों ओर काली-काली नागिनें आ गयीं हैं और कपोलों पर कुछ श्रम-कण मोती की बूंदों की तरह झलक रहें हैं तथा अंगिया के ऊपर बहुत सुंदर हार ऐसे झूम रहा है कि मानो ऐसी चाल पर हार भी मस्त हो रहा है । **"अलक-रलक श्रम कण की झलकन, उर पर हार बिलोलै ।"** बसन्त ऋतु की हवा चल रही है, उस समय लाड़ली जी का अंचल (फ़रिया) उड़ा, उस अंचल की वायु को पाकर श्रीकृष्ण धन्य हो गए । बसंत का समय है इसलिए फ़रिया (चूनर) पीली है,

इत्र से भीगी है। बसंत के समय पीली फरिया, पीली अंगिया, पीली तरहरिया श्रीजी पहने हैं , इससे एक अद्‌भुत शोभा हो रही है, ऐसे में वृन्दावन की हवा चलती है और श्रीजी का अंचल उड़ाती है और उसकी सुगंध लेकर श्रीकृष्ण के पास पहुँचती है। **"केसरिया फ़रिया तरहरिया लहंगा ललित अमोलै।"** लहंगा लाल है। श्रीजी इस प्रकार जा रहीं हैं जैसे गौर वर्ण की कोई चमकती हुई ज्योति (दीपक की लौ) आँखों को चकाचौंध करती हुई चली जा रही है जैसे आकाश से दामिनी पृथ्वी पर उतर आई है और आँखों को चकाचौंध करती हुई चली जा रही है। ऐसा श्रीजी का दिव्य रूप है, दिव्य कान्ति है, दिव्य सौंदर्य है, दिव्य आभा है। जब कोई ज्योति चलती है तो हवा के स्पर्श से जगमग-जगमग करती हुई चलती है। **"जगमग ज्योति जराय जरी सी, दीपति दामिनि ओलै।"** इस तरह से श्रीजी जा रही हैं। आकाश में तो एक बिजली आती है और चमक कर चली जाती है लेकिन यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे करोड़ों दामिनियाँ पृथ्वी पर उतर आयी हैं और उनकी लड़ नहीं टूट रही है। श्रीजी ऐसी चमचमाती हुई जा रही हैं जैसे दामिनियों की पंक्ति चमचमाती हुई चली आ रही है। सारा वृंदावन गौर तेज से प्रकाशित हो रहा है। गौरांगी का गौर रूप झक-झक करता हुआ सम्पूर्ण वृन्दावन में चल रहा है। दामिनियों की घटा चली आ रही है, एक-दो नहीं और यह विचित्र दामिनी है। आकाश की दामिनी तो कभी रुकती नहीं है। यह दामिनी कभी रुकती है, कभी मुड़ती है और कभी अपने रूप को तौलती है कि मेरा प्रभाव कृष्ण पर कितना है। कभी इधर मुड़ती हैं, कभी उधर मुड़ती हैं, कभी पीछे देखती हैं। **"ठमकि ठमकि पग धरति धरनि पर रूप अनूपम तौले।"** कभी-कभी राधारानी और श्यामसुंदर में प्रायः यह होड़ लग जाती है कि तुम सुन्दर हो अथवा मैं सुन्दर हूँ। यह रसिकों ने भी लिखा है कि श्रीकृष्ण कहते हैं कि लाड़लीजी यह बताओ कि मैं सुन्दर हूँ कि आप सुन्दर हो। राधारानी बोलीं कि हमसे क्या कहते हो, यह तो तुम दर्पण में स्वयं ही देख लो कि मैं तो गोरी हूँ और तुम श्याम हो। वही भाव महावाणी के इस पद में है कि राधारानी वनविहार में जा रही हैं और उनका अंचल उड़ा, उससे श्यामसुंदर धन्य तो हो गए लेकिन श्रीजी के अंग की शोभा देखने लग गए। श्रीजी बोलीं – "अच्छा ! हमारा रूप देखते हो, बताओ तुमसे अच्छा है कि कम है।" रूप का जब तौल हुआ तो श्रीजी का दिव्य अंग और चमकने लगा क्योंकि नायिका पर नवयौवन जितना चमकता है उतना नायक पर नहीं चमकता है, क्यों ? इसे संसार में देख लो, यौवन पुरुष पर भी आता है और स्त्री पर भी आता है लेकिन यौवन स्त्री पर जितना खिलता है उतना पुरुष पर नहीं खिलता है।

"अति रति रंग रंगी नव यौवनी उमगि उमगि रस डोलैं।
श्रीहरिप्रिया धन्य बड़भागी जो या बिरद बिलोलें।।"

श्रीजी रस को प्रवाहित कर रही हैं, श्यामसुंदर उसका पान कर रहे हैं और वे रसिकजन भी धन्य हैं जो इस रस को निरन्तर पी रहे हैं। इस वनविहार-लीला में 'केसरिया फ़रिया की उड़ान' को देखकर श्रीकृष्ण परम कृतार्थ हो गए।

जब श्रीजी वन में क्रीडा कर रही थीं तो उनके गौर अंग की दिव्य सुगन्ध से आकर्षित होकर एक काला भ्रमर आया। उस भ्रमर को उड़ाने के लिए गौरांगी ने अपने अंचल की हवा की तो इस तरह से उस वायु ने प्रवाहित होकर श्रीकृष्ण का स्पर्श किया। श्रीजी के अंचल से प्रवाहित वायु की दिव्य सुगन्ध को पाकर मधुसूदन धन्यातिधन्य हो गए। ग्रन्थकार लिखते हैं कि एकबार श्रीजी यमुना तट को जा रहीं थीं । श्रीयमुनाजी की शोभा का वर्णन परमरसिक श्रीहरिरामव्यासजी करते हैं –

चलो मन कालिन्दी के तीर।

यमुना किनारे चलो, जहाँ सुन्दर नीला जल बह रहा है। यमुना के सुन्दर तट पर अनेक कदम्ब वृक्ष हैं और कदम्बों के बीच से एक सुन्दर पगडण्डी जा रही है। वहाँ से यमुना जी की छटा दिखाई पड़ रही है। नीलमणि की तरह सुन्दर यमुना जल चमक रहा है। व्यास जी कहते हैं कि यमुना नीली क्यों हुई ?

कृष्ण प्रेम रंग राची यमुना ह्वै गई स्यामल नीर।
चलो मन कालिन्दी के तीर, चलो मन कालिन्दी के तीर।।
जहाँ विहरत वृषभानुनन्दनी .....

यमुनाजी के नीलेपन का इसीलिए वर्णन किया गया क्योंकि कृष्णप्रेम में यमुना नीली हो गयी और कोई दूसरा कारण नहीं है, उस यमुना की इतनी अधिक महिमा केवल इसीलिए है क्योंकि उसके जल में जब प्रिया-प्रियतम स्नान करते हैं तो श्रीराधारानी के वक्षःस्थल पर जो चन्दन की, कुंकुम की, पुष्प के रसों की पत्रावली होती हैं, वह यमुना जल में बह जाती है। इसके कारण यमुना में अत्यधिक चमक उत्पन्न हो जाती है। श्रीजी के वक्षःस्थल की कुंकुम इसलिए बही थी क्योंकि वह श्यामसुन्दर के साथ जल क्रीडा कर रहीं थीं। वह जल क्रीडा कैसी है ? अत्यंत प्रेमावेशमय है। श्रीकृष्ण श्रीजी से होड़ लगाते हैं, कभी तैरने में, कभी आगे बढ़ने में। इस तरह से उनके पुष्पों की माला टूट जाती है, मोतीमाला भी टूट जाती है और टूटकर यमुना जी में बहने लगती है। ये वही नील कल्लोलिनी यमुनाजी बह रही हैं।

इस प्रसंग का वर्णन इसलिए किया गया कि एक दिन श्रीजी सखियों से कहती हैं कि चलो आज यमुनाजी चलते हैं। कैसे चलें ? श्रीजी बोलीं कि कीर्ति मैया से कहूँगी कि यमुना जल अत्यंत मधुर है अतः यमुना जल लेने जा रही हूँ। राधारानी कीर्तिमैया के पास गयीं और बोलीं – "मैया ! आज मैं यमुनाजी जाऊँगी।" 'श्रीजी' मैया-बाबा की अत्यंत लाड़ली हैं, उनकी कोई भी अभिलाषा कीर्ति मैया नहीं रोक सकती हैं, इतनी अधिक मैया की वे दुलारी हैं। कीर्ति मैया की

अनुमति मिलने के बाद राधारानी और उनकी सभी सखियाँ यमुना की ओर चल पड़ती हैं।

राधा सखियन लई बुलाय।

सुबह का समय है, सभी को श्यामसुन्दर से मिलने की इच्छा है और उधर से श्यामसुन्दर भी चल देते हैं इस मनोरथ के साथ कि अब लाड़लीजी के दर्शन होंगे ...!

चलहु यमुना जलहि जइए चली सब सुख पाय।

कदम्ब के वृक्षों के मध्य से एक सुन्दर कुंज गली जा रही है, उस पर चमकती हुयी लाड़ली जी और उनकी सखियों का समूह जा रहा है, अति सुन्दर दृश्य है। राधारानी के पास एक सोने का कलश है, जिसे एक सखी उठाकर चल रही है। सखियों के बीच में राधामहारानी जा रही हैं। कैसी सुन्दर छटा है !!! यमुना इस तरह से प्रवाहित हो रही हैं –

प्रातःकाल का समय है, सूर्य उदित हो रहे हैं और यमुना-जल चमक रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि यमुना की लहरों में सैकड़ों सूर्य बहते हुए चले आ रहे हैं। एक-एक लहर पर सूर्य चमक रहा है। ऐसा लगता है कि वृषभानुनन्दिनी का स्वागत करने के लिए अनेक-अनेक सूर्य चले आ रहे हैं लहरों पर, प्रत्येक तरंग पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है।

एक सखी कलश लीन्हे तुरत पहुँची जाय।

श्रीजी की एक अत्यन्त प्रिय सखी उनका स्वर्ण कलश लेकर आगे-आगे चल रही है। सुन्दर यमुना के मणिमय तट पर उधर से कदम्ब की गलियों में होते हुए श्यामसुंदर पहले से पहुँच गए हैं। वह पहले से प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वृषभानुनन्दिनी कब आयेंगी ? प्रातःकाल कब उनका दर्शन होगा ?

तहाँ देख्यो श्यामसुंदर कुंवरि मन हरषाय।

यमुना का किनारा है, मयूर मुकुटधारी नन्दनन्दन घाट पर खड़े हैं, सखी कलश लेकर उनके निकट पहुँच चुकी है, लाड़लीजी कुछ पीछे की ओर हैं। सखी ने श्यामसुंदर को देखकर सोचा कि ये तो पहले से यहाँ आ गए हैं। श्यामसुन्दर प्यासी आँखों से चित्र की तरह देख रहे हैं जैसे कोई मूर्तिमान चित्र खड़ा है। किशोरी जी दूर से उनका दर्शन कर प्रसन्न हो गयीं। श्यामसुन्दर नीचे एकटक देख रहे हैं, अपने आप को भूल गए हैं, उनका मन राधारानी के मुख दर्शन में तन्मय है। भानुजा, भानुजा तट पर और भानुजा प्रकाश के बीच में खड़ी हैं। एक भानुजा तो हैं श्रीराधा एक भानुजा है यमुना और एक भानुजा की कांति अर्थात सूर्य की किरणें, इन तीन भानुजाओं का योग हो रहा है और इन तीनों के मध्य में श्रीकृष्णचन्द्र खड़े हैं, जहाँ तीन-तीन भानुजायें हैं, वहाँ चन्द्र स्वयमेव ही मौन हो जाएगा। श्रीकृष्णचन्द्र मौन होकर मूर्ति की तरह खड़े हैं, हिल नहीं रहे हैं। सखी ने कहा – "किशोरी जू ! श्यामसुन्दर तो खड़े रहेंगे, हमें तो वापस चलना है।"

किशोरी जी बोलीं – "अच्छा ! अच्छा चलो !! ऐसा कहकर किशोरी जी यमुना में प्रवेश करती हैं जल भरने के बहाने। जब वे यमुना जल भरने लगती हैं, यह देखकर श्यामसुन्दर के तो होश उड़ गए और सोचने लगे कि क्या ये चली जायेंगी ? अत्यंत ही चकित होकर देख रहे हैं और उनकी यह दशा देखकर किशोरीजी मुस्कुरा रही हैं और कह रही हैं कि देख तो सही, कितनी बड़ी इनकी दर्शन की प्यास है।

सूर प्रभु की प्रिया राधा भरती जल मुस्काय।

इस तरह से मनमोहन को मोहित करने वाली मन्द-मन्द मुस्कान से सुशोभित श्रीराधिका यमुना तट पर सखियों के साथ यमुना-जल भर रही हैं।

कृष्णप्रेम की तरंगें

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'गोपीगीत' (२७/७/१९९७) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी ब्रजबाला जी, मानमंदिर ,बरसाना

श्रीकपिल भगवान् ने कहा है कि भक्ति अनन्त प्रकार की होती है

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥

(भागवत ३/२९/७)

भक्ति की कोई श्रेणी नहीं कर सकता, जैसे - प्रह्लादजी ने नवधा भक्ति का वर्णन किया। नारदभक्तिसूत्र में ग्यारह प्रकार की भक्ति बतायी गई है। आगे चलकर नारदजी ने अठारह प्रकार की भक्ति का वर्णन किया। भगवान् कपिल बोले कि भक्ति अनन्त प्रकार की होती है क्योंकि भाव अनन्त होते हैं इसीलिए नायिकाएँ भी अनन्त होती हैं। आचार्यों ने जो कुछ भी लिखा, वह तो बहुत थोड़ा लिखा। यदि सनातन गोस्वामीजी ने गोपियों की ओर से कृष्ण को अकृतज्ञ कहा तो यह उन्होंने बढ़ाकर नहीं कहा है। जैसे - भ्रमरगीत का प्रमाण है। भ्रमरगीत तब गाया गया जब उद्धवजी ब्रज में आये। श्रीकृष्ण ने उनको ब्रज में भेजा कि वहाँ मेरा संदेशा ले जाओ। यहाँ उनके ज्ञान का सुन्दर वस्त्र फट कर गुदड़ी बन गया। ज्ञान गुदड़ी बन गया, प्रेम रंग में रंग गया। गोपियों ने उद्धव जी के सामने बहुत कुछ कहा।

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ।।

(भागवत १०/४७/१६)

गोपियों ने कहा कि अरे भंवरे ! तू यहाँ से भाग जा, तू बार-बार उड़कर हमारे चरणों की ओर आता है, हमारी चापलूसी करने के लिए झुककर हमारे चरणों को छूता है, प्रणाम करता है । तेरी चापलूसी की आदत है, यह तू कहाँ से सीख कर आया है । 'कृष्ण' जिनका नाम मुकुंद है, वह अनुनय-विनय करने (मनाने) में बहुत चतुर थे, कपटी थे । इसीलिए मूल श्लोक (भागवत १०/३१/१६) में कृष्ण को कपटी कहा गया है ।

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥

(भागवत १०/४७/१५)

गोपियाँ कहती हैं – अरे ! उस कपटी की कपट रूपी भौंहों की मरोड़ से, उनके नेत्रों की चोट से ऐसी कौन-सी स्त्री है, कौन-सी नायिका है, जो घायल न हुई हो, जो बच गयी हो । इसीलिए उसकी सारी मानलीला कपटभरी है । अरे भ्रमर ! तू उस कृष्ण से कपट सीख कर आया है । वह बड़ा कृतघ्न है, छोटा-मोटा कृतघ्न नहीं है । हे भौंरे ! ऐसे अकृतज्ञ की तू बात करता है । (यह भाव सनातन गोस्वामी जी ने यहाँ से लिया है, यह इसका प्रमाण है) । कृष्ण बहुत बड़े कृतघ्न हैं क्योंकि हमने उनके लिए सब कुछ छोड़ दिया, पति छोड़ा, पुत्र छोड़ा, घर-मकान छोड़ा, धन-संपत्ति छोड़ा, सारा संसार छोड़ दिया लेकिन उस निष्ठुर ने हमारे त्याग का महत्व नहीं समझा, वह इतना निष्ठुर निकला कि हमारी प्रीति को नहीं समझ पाया ।

प्रीति किए पछतानी निठुर संग ।

हम जानी यह प्रीति निभेगी, झूठी भई कहानी निठुर संग ।
प्रीत किए पछतानी.....

गोपियाँ कह रही हैं – कृष्ण के लिए हमने क्या नहीं छोड़ा लेकिन वह निष्ठुर हमें ही छोड़ गया । वह कृतघ्न हैं । ये काले जितने हैं उनसे प्रेम नहीं करना चाहिए । "सखी ये काले सब ठगहा ।"

एक काले वह थे जिनको राम कहा गया है, वे पूरे ठग थे । काले राम ने क्या किया ?

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥

(भागवत १०/४७/१७)

एक व्याध की तरह, चोर की तरह छिपकर बाली को मार दिया जो महान बलशाली था जिसके सामने रावण भी कुछ नहीं था, जब वह सुग्रीव के साथ लड़ रहा था तो राम ने वृक्ष के पीछे से छिपकर उसे बाण मार दिया, क्या यह ठग विद्याई नहीं है ? बेचारी सूर्पनखा जो एक स्त्री थी, उनसे प्रेम करने गयी थी, उसने क्या अपराध किया था ? उसके नाक-कान काटकर विरूप कर दिया । यद्यपि स्वयं उनकी स्त्री सीता ने उनको जीत लिया था, उसके विरह में वह 'हे प्रिये ! हे सीते !!' कहकर वन-वन तड़पते फिरे । ये काले जितने भी हैं, ऐसे ही निष्ठुर होते हैं । कौए को देखो जो कोई उसे खिलाता है, उसी को चोंच मारता है । राजा बलि ने वामन भगवान् को तीनों लोकों का दान दिया, ऐसा बड़ा दान आज तक किसी ने नहीं किया, उन्होंने अपने शरीर तक को नपवा (दान में समर्पित कर) दिया परन्तु निष्ठुर वामन भगवान् ने उन्हें नागपाश में बँधवा दिया । ये जितने भी काले हैं इनकी बात ही मत करो ।

इसीलिए सनातन गोस्वामी जी लिखते हैं कि यहाँ (१०/३१/१६) 'कितव' के पीछे बहुत से भाव छिपे हुए हैं । गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण अकृतज्ञ हैं क्योंकि उन्होंने हमारे मन को चुराया और जब मन चला जाता है तब क्या बचता है, कुछ नहीं । कृष्ण का नाम चितचोर है, जब चित्त ही चला गया तो बचा क्या, सर्वस्व की चोरी हो गयी । अब उसका परिणाम ये रहा कि वह हमको छोड़कर चले गए इसलिए कृष्ण से बढ़कर अकृतज्ञ कौन होगा ? एक स्थान पर गोपियाँ इसी कपटी के भाव को कहती हैं कि सखी ! ये तीन जगह से टेढ़े हैं, जो टेढ़ा होता है, वह किसी की पीड़ा (दर्द) को नहीं जानता है । यह प्रेमियों की भाषा है, यह प्रेम राज्य है, यहाँ प्रेम की विचित्र प्रकार की तरंगे उठा करती हैं । प्रेम के भीतर कभी निर्वेद, कभी ग्लानि, अमर्ष आदि तरंगे उठा करती हैं, ये सब अमृतमयी तरंगे हैं । यह प्रेमस्वरूपा शक्ति का विकास है, जिसे हम जैसे मूढ़ नहीं समझ सकते । जो प्रेमशून्य हैं, वे इस प्रेम की भाषा को नहीं समझ सकते । गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं कि कपटी तो फिर भी छोटा है, तुम तो कपटी से भी अधिक हो ।

सनातन गोस्वामी जी अपना भाव लिखते हैं –

कः कितवोऽपि त्यजेत् अपितु कितवोऽपि त्यक्तुं न शक्नुयादिति अतस्त्वयि न केवलं धूर्त्तत्वं परमाकृतज्ञत्वमपि पर्य्यवस्येदिति भावः।

(श्रीमत्सनातनगोस्वामी कृत बृहत्तोषिणी)

कपटी भी स्त्रियों को रात में जंगल में छोड़कर नहीं जाएगा इसलिए तुम कपटियों से भी अधिक बुरे हो, तुम धूर्त ही नहीं परम कृतघ्न भी हो । लेकिन सैद्धान्तिक-दृष्टि से ऐसा नहीं है क्योंकि भगवान् श्यामसुंदर तो सर्वज्ञ हैं, पूर्ण हैं । 'पूर्ण' से तात्पर्य है कि उनको किसी सहायता की या किसी कार्य में मदद की जरूरत नहीं है और उनके ऊपर कोई क्या उपकार कर सकता है, जो विश्वम्भर है, अनंत जीवों

को देता है। हम लोग तो छोटा-से कुटुम्ब का भी पालन-पोषण नहीं कर पाते और उस विराट प्रभु की शक्ति को देखो, जो जल में, थल में, आकाश में और हमारे-तुम्हारे शरीर के भीतर स्थित करोड़ों जीवाणुओं का पालन-पोषण कर रहा है। अब तो विज्ञान भी मानता है कि एक सुई की नोक पर १० हजार बैक्टीरिया (कीटाणु) रहते हैं। समस्त संसार की जनसंख्या से भी अधिक जीवाणु हमारे शरीर में निवास करते हैं। इसलिए यह विचार करना चाहिए कि मनुष्य शरीर पाना कितना कठिन और कितना दुर्लभ है लेकिन हम इस शरीर की कीमत को समझ नहीं पाते हैं। यदि समझ जायें तो हम अपनी एक श्वांस भी व्यर्थ नहीं गंवायेंगे। जो सच्चे भक्त होते हैं उनकी एक श्वास भी व्यर्थ नष्ट नहीं हो सकती। जिनको विवेक है वे इसी तरह से भजन करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि जो श्वास जा रही है, वह कभी लौटेगी नहीं। तीनों लोकों का राज्य भी देने से एक श्वास नहीं बढ़ सकती, यह इतनी अमूल्य है। इसीलिये जिसको विवेक हो जाता है, वह संसार के समस्त पदार्थों तथा भोगों का त्याग करके एक-एक श्वास भगवान् में लगाता है। "स्वास–स्वास पे कृष्ण रट, वृथा स्वास मत खोय। न जाने या स्वास को, आवन होय न होय।।" जिसको ज्ञान होता है वह प्रत्येक श्वास को भगवान् के स्मरण में लगाकर अतिदुर्लभ मानव-जीवन को सार्थक करता है और जो इन अमूल्य श्वासों को मिथ्या संसार में मन लगाकर नष्ट कर देता है, वह तो पशु की तरह है। जिस प्रकार पशु-पक्षी जीते हैं, इनको पता नहीं कि भगवान् क्या है, इस संसार को बनाने वाला भी कोई है, उससे मिलना भी चाहिए। भगवान् से मिले बिना मनुष्य भटकता रहता है। जीव 'भगवान्' का क्या उपकार कर सकता है ? कुछ नहीं कर सकता। आप दुनिया में देखो, एक छोटा-सा बच्चा है, उसको कौन पालता है, कौन दूध पिलाता है, कौन स्नान कराता है ? उसकी माँ ही ये सब सेवा करती है। अगर माँ न हो तो बच्चा मर जायेगा। गोद का शिशु तो अपना मल धोना भी नहीं जानता, वह केवल इतना ही जानता है कि जब भूख लगती है तो रोने लगता है, रोने के बाद कोई आती है, उसको दूध पिला जाती है, उसके मल-मूत्र को धो जाती है, जाड़े में गर्म कपड़े ओढ़ा जाती है, गर्मी में पंखा कर जाती है, शिशु केवल उसी को जानता है और कुछ नहीं जानता है, तो यह भी एक दुनिया है, यह मिथ्या ममता और प्रेम की दुनिया है। संसार में सच्चा प्रेम कहीं नहीं है, केवल स्वार्थमय कामनाओं या विषय-भोग के कारण वास्तविक प्रेम की नक़ल है। विशुद्ध प्रेम भगवान् या उनके भक्तों में ही होता है।

अब यहाँ पर एक प्रश्न आता है कि इस श्लोक -

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥

(भागवत १०/३१/१६)

में मूल शब्द तो है कितव (कपटी), उसकी सनातन गोस्वामी जी ने इतने अधिक विस्तार से व्याख्या क्यों की है ? इसका उत्तर यह है कि उन्होंने अपनी ओर से कोई बात नहीं कही है। ये आचार्यजन सखियों के अवतार हैं, अतः वे गोपियों के भावों को जानते हैं। गोपीगीत के प्रत्येक श्लोक पर हर आचार्य ने अलग-अलग भाव लिखे हैं, क्यों ? जैसे बहुत से आचार्यों ने लिखा कि गोपीगीत समवेतगान है अर्थात् समस्त गोपियों ने एक साथ मिलकर इसे गाया है, कुछ आचार्यों का मत है कि यह भिन्न-भिन्न गान है, उन सबका संग्रह शुकदेवजी ने रखा है, तो सभी आचार्यो ने यथार्थ लिखा है, क्योंकि यदि अनेक भक्तजन मिलकर किसी गीत को एक साथ गाते हैं तब भी सबके भाव अलग-अलग रहेंगे और अगर वे सभी भिन्न-भिन्न होकर गाते हैं तब भी सबके भाव विभिन्न ही रहेंगे, भावों की विविधता रहती ही है।

नायिकाओं के अनंत भेद क्यों हैं ? प्रकृति वैचित्री, भावों की वैचित्री के कारण।

.....

प्रेमानन्द मूल कृष्णनाम

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'नाम-महिमा' (२०/५/२०१०) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी दिव्या जी, मानमंदिर ,बरसाना

चैतन्य चरितामृत में मध्य लीला के नौवें परिच्छेद में पद्मपुराण का प्रमाण दिया गया है –

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

इस श्लोक का प्रमाण सर्वमान्य प्रमाण है। इसीलिए चैतन्य चरितामृत के रचयिता कृष्णदास कविराज ने भी इसको माना है और लिखा है। इसके आगे फिर उन्होंने इस श्लोक को भी माना है –

राम-रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनामभिस्तुल्यं राम नाम वरानने॥

लेकिन इसके आगे उन्होंने ब्रह्माण्ड पुराण का एक प्रमाण दिया है, वह राम और कृष्ण नाम की तुलना की दृष्टि से नहीं कहा है । वह तुलना तो स्वयं ही हो गई । ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार -

सहस्त्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत्फलम् ।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति ।।

विष्णुसहस्त्रनाम तीन बार पाठ करने से जो फल मिलता है अर्थात् तीन हजार विष्णु नाम पाठ करने का जो फल है, वह केवल एकबार कृष्णनाम के ही उच्चारण द्वारा प्राप्त हो जाता है । इससे स्पष्ट हो गया कि तीन बार रामनाम का उच्चारण और एकबार कृष्णनाम का उच्चारण समान है । ये बात चैतन्य महाप्रभु जी ने एक ब्राह्मण को बताई थी, वह विप्रदेव पहले निरंतर रामनाम जप करते थे और रामनाम के बिना कुछ बोलते ही नहीं थे । महाप्रभु जी उसके घर से भिक्षा मांगकर आगे चले गये । कुछ देर पश्चात जब वह पुनः वहां लौट कर आये तो देखा कि वह ब्राह्मण कृष्ण नाम का जप कर रहा था । उससे महाप्रभु जी ने पूछा, तुमने ऐसा क्यों किया, तुम तो रामनाम जपते थे, अब कृष्ण नाम का जप कैसे कर रहे हो ? उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि यह आपके दर्शन का प्रभाव है । मैं बचपन से ही रामनाम जपता था लेकिन जबसे आपका दर्शन किया है तब से मेरी जिह्वा पर स्वतः ही कृष्ण नाम बैठ गया है । तदनन्तर मैंने शास्त्र में कृष्ण नाम की महिमा पढ़ी । उसने महाप्रभु जी को कृष्ण नाम की महिमा सुनाई । जिस प्रकार राम नाम की महिमा के सम्बन्ध में महादेव जी द्वारा कथित यह प्रसिद्ध श्लोक है -

रमन्ते योगिनो अनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदे परम ब्रह्मा विधीयते ।

उसी तरह से कृष्ण नाम की व्युत्पत्ति पर महाभारत (उद्योग पर्व) में यह सर्वप्रसिद्ध श्लोक है ।

कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निवृत्तिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।।

कृषि भू वाचक शब्द है । कृषि धातु का अर्थ है सत्ता और ण माने आनंद; अनन्त जगत की सत्ता जिसके हाथ में है, अनन्त सत्ता और अनन्त आनंद मिला करके कृष्ण हो गया ।

अब प्रश्न है कि जैसे महादेव जी ने कहा कि विष्णुसहस्त्रनाम के समान एक राम नाम है तो क्या उन्होंने भगवन्नामों की तुलना की है क्योंकि वैष्णव धर्म में छोटा बड़ा करना तो ठीक नही है । इसका उत्तर है कि छोटे-बड़े की बात नही है । जैसे सभी देवताओं के अलग-अलग नाम हैं, जैसे इंद्र नाम है, अग्नि नाम है, वरुण नाम है तो सभी देवता अंश हैं और भगवान् अंशी हैं । भागवत के अनुसार जितने अवतार हैं वे सब अंश हैं और श्रीकृष्ण अंशी हैं । प्रथम स्कन्ध में पहले तो समस्त अवतारों का वर्णन किया गया और फिर तीसरे अध्याय (१/३/२८) में कहा गया है कि ये सब भगवान के अंश-कला हैं और भगवान् कृष्ण स्वयं अंशी हैं । अंश और अंशी दो चीजे होती हैं । यहाँ तक कि भगवान् विष्णु का जो पुरुष रूप है वो भी कृष्ण का अंश है । अंशी की उपासना ही जीव का एकमात्र चरम लक्ष्य है और अंतिम सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है । उसी तरह से जितने भगवन्नाम हैं, उन नामों में अंशी का नाम ही प्रधान होता है ।जैसे अनेक विष्णु नामों में राम नाम प्रधान हुआ क्योंकि रामावतार में लीलाओं का विकास अधिक हुआ, जीवो का कल्याण हुआ तथा अंशी की अधिक अभिव्यक्ति हुई, उसी तरह से श्रीकृष्ण जो अंशी हैं जब वह अवतरित हुए तो जिन प्रेम की कलाओं का रामावतार में विकास नहीं हुआ था उन संपूर्ण प्रेम कलाओं का कृष्णलीला में विकास हुआ । इसी दृष्टि से ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि राम नाम एक हजार विष्णु नाम के बराबर है और कृष्ण नाम तीन हजार विष्णु नाम के बराबर है । उसका मूल कारण है –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥

(श्रीमद्भागवत१/३/२८)

स्वयं भगवान् कृष्ण ही अंशी हैं और शेष जितने भी अवतार हैं, वे कोई-कोई तो भगवान कृष्ण के अंश हैं, कोई-कोई भगवान की कलाएं हैं, कोई-कोई अंशांश हैं लेकिन अंशी श्रीकृष्ण हैं । इसीलिए राम नाम को तारक ब्रह्म कहा गया है । स्वयं नाम ही तारक अर्थात तारता है । इसी तरह कृष्ण नाम पारक है । अंशी का नाम और अंश के नाम में कोई अन्तर नहीं है ।

गोस्वामी जी कहते हैं –

जान आदिकवि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ।।

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

वाल्मीकि जी ने राम जी से अपनी कथा स्वयं कही है अध्यात्म रामायण में, अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ में, वह कहते हैं कि मैं पहले प्रचेता ऋषि का बालक था लेकिन भीलों-किरातों ने मेरा पालन किया था । उसके बाद मुझे छोड़कर वे चले गए । मैं ब्राह्मण-पुत्र था इसीलिए मेरा विवाह शूद्र स्त्री से हुआ । चोरों के संग से मैं चोर बन गया, जीवों की हत्या करता था । ये प्रसंग अध्यात्म रामायण में है, वाल्मीकि जी ने स्वयं अपने मुख से कहा है । एक बार सात तेजस्वी ऋषि आ रहे थे, उनको मारने को मैं चला । उन्होंने कहा – "अरे द्विजाधम ! तू क्यों दौड़ता है ?" उनके ऐसा कहने से मेरे धनुष का बाण रुक गया, उनमे ऐसा तेज था ।"संत दरस ते पातक टरही ।" भक्तों के दर्शन से ही पाप जलता है, वैसे तो वह कभी हत्या से रुकते नहीं थे लेकिन संतों के दर्शन से रुक गए जैसे गौतम बुद्ध के दर्शन से अंगुलिमाल डाकू की हत्या की वृत्ति रुक गयी थी । ऐसी अनेक कथायें हैं । सप्त ऋषियों ने कहा – "तू जो पाप कर रहा है, हत्या कर रहा है, क्या तेरे स्त्री बच्चे भी इस पाप के फलभागी होंगे, तू उनसे पूछ के आ ।" वाल्मीकि जी पूछने गए तो उनके घरवालों ने मना कर दिया और बोले कि हम तो लड्डू-पूड़ी खाते हैं, पाप तो तुमको लगेगा ।

बेटा-बेटी अपने पिता के किये हुए पाप का फल नहीं भोगते हैं, वे तो केवल उसके कमाए हुए धन से मजा मारते हैं। अपने किये हुए पाप का दंड तो मनुष्य को अकेले ही भोगना पड़ता है। इतना सुनते ही वाल्मीकि जी को ज्ञान हो गया और उन सप्त ऋषियों के चरणों में गिरकर बोले – "मेरी रक्षा कीजिये।" तब ऋषियों ने उन्हें मरा-मरा जपने का उपदेश किया। इन्होंने नाम जप शुरू किया, नाम जप में इतना तल्लीन हो गए कि इनके शरीर में दीमक चढ़ गयी और सारा शरीर चाट गयी, हड्डी-खून कुछ नहीं रहा। दीमक के ढेर को बल्मीक कहते हैं । बल्मीक से उत्पन्न हुए बाल्मीकि। एक हजार युग तक इन्होंने मरा-मरा का जप किया। वे सातों ऋषि फिर से आये और बोले – "बांबी से निकल, अब तू बाल्मीकि मुनीश्वर है।"

जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।

यही दशा गणेशजी की थी। आनंद रामायण के राज्यकाण्ड में गणेश जी सनत्कुमार से कहते हैं कि मैं पहले हाथी रूप से पैदा हुआ था और ऋषि मुनियों को मार डालता था। मेरे ऊपर ब्रह्महत्या इतनी चढ़ी कि मैं बेहोश हो गया तब महादेव जी ने भगवान् का स्मरण किया, रामजी प्रगट हुए और बोले क्या चाहते हो तो महादेवजी बोले कि मेरे इस पुत्र को पाप रहित कर दीजिये। भगवान् ने राम नाम का उपदेश किया, उससे मैं पूज्य हो गया। नाम-महिमा के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने अगली चौपाई ये कही है

सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
जपि जेईं पिय संग भवानी॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - १९)

इस चौपाई से सम्बंधित कथा है पद्मपुराण उत्तर खंड अध्याय २५४ में। वहाँ महादेव जी ने पार्वती जी से कहा कि तुम गुरु बनाओ। लोग कहते हैं कि स्त्री को गुरु नहीं बनाना चाहिए क्योंकि पति ही उसका गुरु होता है परन्तु यह गलत है। भक्तिमार्ग में स्त्री भी गुरु बना सकती है। महादेव जी की आज्ञा से पार्वती जी ने जाकर वामदेव जी से वैष्णव मंत्र लिया। वामदेव जी ने कहा कि तुम विष्णुसहस्रनाम का प्रतिदिन पाठ किया करो। गुरु उपदेशानुसार वह विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने लग गयीं। एक दिन की बात है एकादशी व्रत करने के उपरान्त द्वादशी को महादेव जी भोजन करने बैठे तो पार्वती जी को भी भोजन के लिए बुलाया तो पार्वती जी बोलीं कि मेरा अभी विष्णुसहस्रनाम का पाठ पूरा नहीं हुआ है, उसमे विष्णु भगवान् के एक हजार नाम हैं। शिव जी बोले कि तुम धन्य हो, चलो हम तुमको एक ऐसी विधि बतातें है कि अभी तुम्हारा पाठ समाप्त हो जाएगा, उन्होंने कहा - हे देवी ! राम का अर्थ है कि सब योगी लोग जिनमे रमण करें - राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।

सहस्रनामभिस्तुल्यं राम नाम वरानने॥

भगवान् के एक हजार नाम के बराबर है एक राम नाम, इसलिए तुम राम नाम जपो। पार्वती जी ने ऐसा ही किया और भोजन करने बैठ गयीं। इस घटना के बाद ही पार्वती जी सतियों में श्रेष्ठ बन गयीं।

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड - १९)

भगवान् के नाम पर ऐसी निष्ठा देखकर महादेव जी ने पार्वती जी को सतियों में सर्वश्रेष्ठ बना दिया। इससे पहले पार्वती जी सतियों में सर्वश्रेष्ठ नहीं थीं लेकिन भगवन्नाम के प्रभाव से सती शिरोमणि बन गयीं। सती आदि कोई भी धर्म हो उनमे भगवन्नाम ही सिद्धि देने वाला है। ये सबसे बड़ा प्रमाण है।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९/३२)

कोई दुराचारी भी है तो भगवन्नाम के आश्रय से वह सर्वश्रेष्ठ बन जायेगा ('आश्रय' - भगवन्नाम)। दुराचारिणी स्त्री भी भगवन्नाम के आश्रय से पतिव्रताओं से आगे चली जायेगी और यदि कोई पतिव्रता है लेकिन भगवन्नाम से विहीन है तो व्यर्थ है।

.....

निर्द्वन्द्वता में ही धाम-प्रीति का आविर्भाव

श्रीबाबा महाराज के सत्संग 'धाम-महिमा' (५/५/२००६) से संग्रहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका –साध्वी नवीनाश्री जी, मानमंदिर ,बरसाना

यदि हमलोग धाम की महिमा नहीं सुनेगें तो ५ मिनट में ही सर्वनाश हो जाएगा, कुछ पता नहीं कब वृत्ति चंचल हो जाए। मन पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। भक्तमाल के प्रारम्भ में ही यह बात कही गई है - भक्ति महारानी के श्रृंगार- वर्णन में कहा गया है कि यदि आपने श्रवण रूपी जल से सींचा नहीं तो आपकी भक्ति रूपी लता का वर्धन नहीं होगा। इसीलिए भक्तिरूपी लता को नित्य श्रवण रूपी जल से सींचना ही पड़ता है। सभी शास्त्रों में ऐसा कहा गया है, जैसे - श्रीमद्भागवत के अनुसार –

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/२/१७)

जो नित्य कथा-श्रवण करता है, कृष्ण कैसे हैं ? 'पुण्यश्रवणकीर्तनः' जिनका सुनना, कीर्तन करना ही परम पावनकारी है। हमलोग अपने आप माया को दूर नहीं कर सकते, कथा के श्रवण द्वारा भगवान् हमारे हृदय में आकर समस्त अभद्रों को नष्ट कर देते हैं । भगवान् हृदय में कान के माध्यम से आते हैं ।

यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥

(भागवत ३/५/११)

'नाम निरूपण नाम जतन ते ।' नाम की महिमा का श्रवण प्रतिदिन करना चाहिए, जो लोग नाम-संकीर्तन करते हैं, इसके साथ ही नाम का जतन भी करना चाहिये अर्थात नामापराध, भक्तापराध से बचते हुए नाम का सेवन किया जाये । इसलिए नाम का जतन भी आवश्यक है, ये नहीं कि केवल नाम-महिमा का ही श्रवण कर लिया, नाम-संकीर्तन दिन-रात किया जाए परन्तु भक्तापराध के कारण नाम का फल शून्य ही रहेगा । जैसा कि नारद जी ने भागवत में कहा –

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु सत्सु ॥

(भागवत ४/३१/२१)

किसी भी प्रकार का मद होने पर भगवान् उपासनाओं को भी ग्रहण नहीं करेंगे क्योंकि वे रसज्ञ हैं; यदि तुमने अभिमान किया कि हम बहुत शिक्षित हैं, हम बहुत धनी हैं, उत्तम कुल, आचार्य कुल से सम्बंधित हैं अथवा अति उत्तम कर्म किया है, इस ऐंठ में यदि अकिंचन, गरीब भक्त या साधु का अपराध कर दिया तो तुम हजारों लाखों वर्षों तक साधन करते रहो, फिर भी कुछ नहीं होगा क्योंकि भगवान् उसे स्वीकार ही नहीं करेंगे; ये सब सीखना पड़ता है अन्यथा हम जैसे लोग सोचते हैं कि यह साधक तो मधुकरी माँगता है, भीख माँगता है, इससे हम जैसा चाहे बोल सकते हैं अथवा मंदिरों में कोतवाल होता है, वह साधुओं को व्यर्थ ही फटकारता रहता है; यह सब अनुचित है । भक्त के प्रति कटु वचन बोलने वाली जीभ कट जानी चाहिए क्योंकि साधक भक्त भी भक्त है । सिद्ध भक्त आकाश से उड़कर नहीं आता है । भक्त ही भक्तापराध करता है, यह समझना भी जरूरी है । भक्त से लड़ने-झगड़ने के लिए विदेश का आदमी नहीं आएगा, हमलोग ही आपस में भक्तापराध करते हैं ।

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २१८)

हम सोचते हैं कि यह चौपाई हमारे लिए नहीं है । अरे, ये चौपाई हमारे लिए ही है । जो भक्तों के बीच में रहता है, वही भक्तापराध करता है । इसीलिए रामायण में देवगुरु बृहस्पतिजी इंद्र से कहते हैं –

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २१८)

भगवान् को गाली दो, भगवान् बुरा नहीं मानेगा, हमलोग देते ही हैं क्योंकि कृतघ्न हैं, जिस प्रभु ने हमें मानव-देह दिया उसको छोड़कर मल-मूत्र के भोग में डूबे हुए हैं । इसीलिए सूरदासजी ने कहा –

"मो सम कौन कुटिल खल कामी । जो तन दियौ ताहि बिसरायौ
ऐसो नमक हरामी ।।"

भगवान् हजारों पाप करने पर भी बुरा नहीं मानते लेकिन भक्तापराध करने पर राम की क्रोधाग्नि जला देगी ।

लोकहुँ वेद विदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरवासा ।।
(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २१८)

यह सिद्धांत केवल महापुरुष ही सिखाते हैं, जैसे कि देवगुरु ने इन्द्र से कहा – इन्द्र तुम किस मद में हो, भक्तापराध से डरो । दुर्वासाजी साक्षात् शंकर हैं लेकिन अम्बरीषजी के अपराध के कारण साल भर तक चक्र की अग्नि में जलते रहे, फिर हमलोग तो मक्खी-मच्छर भी नहीं हैं । जब गुरुजन फटकारते हैं तब यह बात समझ में आती है । गह्वरवन के प्रसिद्ध संत पंडित हरिश्चंद्रजी ने एकबार मुझे समझाते हुए उपदेश दिया था कि अपने मन में विचार करो कि तुम ब्रज में अपने शरीर की उपासना करने आए हो अथवा भगवान् की उपासना करने । ध्यान से इस बात को समझो कि ब्रज का कण-कण चिन्मय है । यहाँ की लता पता, यहाँ के वृक्ष सब चिन्मय हैं । राधासुधानिधि में भी कहा गया है –

सद्योगीन्द्र सुदृश्य सान्द्र रसदानन्दैक सन्मूर्त्तयः
सर्वेप्यद्भुत सन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगताः।
ये क्रू रा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्चये
सर्वान्स्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम॥२६४॥

ब्रज में निवास करना है, ब्रज की उपासना करना है तो इस श्लोक को समझना आवश्यक है । धामोपासना का यह चमकता हुआ दिव्य श्लोक है, हमारे गुरुदेव इस श्लोक को बहुत कहा करते थे । इसका भाव यह है कि ब्रजभूमि में जो भी रह रहे हैं उनके बारे में ऐसा समझो कि ये उच्च कोटि के योगीन्द्रगणों से भी अधिक उत्कृष्ट हैं । एक-दो नहिं अपितु जितने भी ब्रजवासी यहाँ रह रहे हैं, सभी घनीभूत आनंद की साक्षात् मूर्ति हैं । ऐसा क्यों ? क्योंकि यह धाम की अद्भुत महिमा है । हाड़-मांस के आदमी में कोई चमत्कार नहीं है । चमत्कार इस बात का है कि कोई व्यक्ति यहाँ रह रहा है, वह बिना कृपा के तो कोई यहाँ नहीं रह सकता, इसलिए यह धाम की महिमा है । प्रश्न उठता है कि ब्रज में चोर-बदमाश आदि भी दिखाई पड़ते हैं तो इसी श्लोक में ही कहा गया है कि कोई ब्रजवासी ऐसा पापी है कि देखने योग्य भी नहीं है, उससे बात करना भी ठीक नहीं है परन्तु ऐसे पापी को देखकर भी उसके प्रति हमारी आराध्य बुद्धि हो जाए, ये है धामोपासना (धामाराधना करने की समुचित

परिपाटी) । ब्रज में तुम यदि किसी पर क्रोध करके, लड़-झगड़कर उसे पराजित भी कर देते हो तो कुछ नहीं मिलेगा । ब्रज में यदि राग-द्वेष के कर्म करोगे तो यह धामोपासना नहीं होगी । हम लोग कर्म तो राग-द्वेष के करते हैं किन्तु ऊपर से माला जपते हैं । इसीलिए नारदजी ने प्रचेताओं से कहा कि लाख जन्म तक उपासना करोगे फिर भी भगवान् ग्रहण नहीं करेगें । अकिंचन भक्तों का अपराध करते हो तो साधु बनकर घूमते रहो माला फेरते हुए और शास्त्रों का पाठ करते हुए परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होगा । वास्तव में ब्रजभूमि का उपासक बनना है तो राधासुधानिधि के उपरोक्त श्लोक में जैसा कहा गया है उसके अनुसार धाम में रहने वाले अत्यंत क्रूर महापातकी मनुष्यों के प्रति भी आराध्य बुद्धि रखना पड़ेगी । रामायण में भी यही बात कही गई है –

सिय निन्दक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १६)

अयोध्या में रहने वाले धोबी ने भगवती सीता जी की निंदा करने का ऐसा अक्षम्य अपराध किया था जो किसी भी जन्म में नष्ट नहीं हो सकता था, जानकीजी के आचरण पर उसने आक्षेप लगा दिया था । एक-दो नहीं, ऐसे अनेक लोग थे, उनका पूरा समुदाय था; ऐसे महा अपराधियों को भी शोक रहित करके धाम महाराज ने अपने भीतर आश्रय दिया, अवध में बसाये रखा, वहाँ से निष्कासित नहीं किया । भगवती सीता की निंदा रूपी पाप की प्रचंड धारा को धाम ने विनष्ट कर दिया । इसीलिए जब ऐसी उच्चकोटि की श्रद्धा को तुम धाम के प्रति रखोगे तो धाम के किसी भी प्राणी से चाहे वह दुरात्मा है, क्रूर है, पापी है, दर्शन व बात करने योग्य भी नहीं है, उसमें भी तुम्हारी स्वाराध्य बुद्धि हो जायेगी । यही धामवास करने की परिपाटी, धामोपासना की शैली है । ऐसी स्वाराध्य बुद्धि से यहाँ रहने पर ही धाम का चमत्कार होता है । यदि किसी ब्रजनारी के प्रति तुम्हारे मन में गलत भाव उत्पन्न भी हुआ तो तुम्हे अत्यंत दुःख होगा, प्रसन्नता नहीं होगी अपितु अपार कष्ट होगा कि ये तो श्रीजी-ठाकुरजी हैं, इनके प्रति मेरे हृदय में प्राकृत भाव कैसे उत्पन्न हो गया । ऐसी स्थिति होने पर समझना कि अब हमारी धामोपासना का आरम्भ हुआ है अन्यथा अभी तक तो धाम में रहते हुए भी हम जैसे लोगों का धामोपासना में प्रवेश ही नहीं हुआ है, एड्मीशन (दाखिला) ही नहीं हुआ है । एडमीशन माने अभी तो धामोपासना में हमारा नाम ही नहीं लिखा गया है । क्योंकि हमारे हृदय में बहुधा प्राकृत भाव ही उत्पन्न होते रहते हैं । जब प्राकृत भाव आते हैं तो ये हमारा नुक्सान करते हैं, हमारी धामोपासना को क्षति पहुँचाते हैं । भावना की राशि को नष्ट कर देते हैं ऐसी स्थिति में भक्ति का आविर्भाव धामप्रेमी रसिक महापुरुषों के सत्संग से ही होगा ? इसीलिए जो दृश्यमान अधिभूत धाम है इसके प्रति भाव रखना, इसके कण-कण में कृष्ण भावना करना । जब यह भावना सुदृढ़ हो जायेगी तो किसी नारी को देखकर उसके प्रति भोगबुद्धि जाग्रत नहीं होगी क्योंकि उसके प्रति ऐसा भाव उत्पन्न होगा कि यह श्रीजी हैं ।

इस अधिभूत धाम (जो हमें सामने दिखाई पड़ रहा है) में आस्था और विश्वास किस ढंग का होना चाहिये, कैसे होना चाहिए, यह रसिक महात्माओं ने बताया है । धाम के प्रति सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है जैसा कि धामनिष्ठ महापुरुषों ने कहा है –

"वृन्दावन में बसत ही एतो बड़ो सुजान ।
जुगलचन्द्र के भजन बिन, निमिष न दीजै जान ।।"

धाम में रहने वाले की सबसे बड़ी चतुरता, कुशलता यही होनी चाहिए जैसा कि ध्रुवदासजी ने उपरोक्त पद में कहा है कि धाम में रहते समय सबसे बड़ा विवेक ये रखना चाहिए कि एक क्षण भी राधा-माधव के स्मरण के बिना खाली न चला जाए । चाहे शरीर में कितना भी कष्ट हो, विषम परिस्थितियाँ हो, भीतर-बाहर के द्वन्द्व हों, फिर भी भजन में प्रमाद कभी नहीं करना चाहिए । ये जितने भी द्वंद्व होते हैं, ये भजन को नष्ट कर देते हैं । इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा – ७/२७, ७/२८

सच्चा भजन तभी होता है जब द्वंद्व चले जाते हैं तब दृढ़ता के साथ भजन होता है । दृढ़व्रत धारण करके भजन तभी चल सकता है । जितने भी द्वंद्व हैं, ये मोह पैदा करते हैं और इनसे छूटने के बाद ही सुदृढ़व्रत अर्थात् निष्ठावाला भजन होता है । उसके पहले हम जैसे लोगों का भजन क्षणिक रूप में चलता है । कभी लुढ़कते हैं फिर चलते हैं, फिर लुढ़कते हैं, फिर उठते हैं; सारा मामला ऐसा ही चलता है । द्वंद्व चित्त में मोह उत्पन्न कर देते हैं, उससे संशय पैदा होता है फिर भजन की सिद्धि नहीं होती है । द्वंद्व केवल राग-द्वेष, काम-क्रोध ही नहीं हैं; अर्जुन के पास युद्ध में न कोई स्त्री थी, न उन्हें किसी से द्वेष था, न कोई और विकार था बल्कि वहाँ उनकी दया ही द्वंद्व बन गई । गीता -२/१

अर्जुन ने कहा - मेरे सामने युद्ध के लिए मेरे गुरुदेव द्रोणाचार्य खड़े हैं, पितामह भीष्म खड़े हैं, ये सब जितने भी दया के द्वंद्व थे, उन्होंने अर्जुन के मन में संशय पैदा कर दिया, मोह पैदा कर दिया कि ये करें कि न करें, ऐसा ठीक है कि वैसा करना ठीक है; इस तरह के तमाम तर्क-वितर्क हमारे चित्त में आते रहते हैं । क्या सच्चा, क्या गलत, क्या सही, क्या झूठ, क्या कर्म, क्या विकर्म, ये सब द्वंद्व हैं । इस प्रकार अनेक तरह के द्वन्द्व होते हैं । शारीरिक भी होते हैं, मानसिक भी होते हैं । तत्त्व सम्बन्धी द्वन्द्व भी होते हैं कि यह सही है अथवा गलत सभी प्रकार के जितने भी द्वन्द्व होते हैं वे चित्त में मोह पैदा करके, संशय पैदा करके जीव की आस्था, विश्वास को, उसके दृढ़व्रत को हिला देते हैं ।

श्री बाबा महाराज अपने जीवन का अनुभव बताते हुए कहते हैं कि जब पहली बार मैं ब्रज में आया तो यहाँ ऐसे बहुत से लोग थे, जो मुझसे कहा करते थे कि तुमको तो नरक होगा क्योंकि तुम अपनी

माँ के इकलौते पुत्र हो इसलिए तुम्हारी माँ तुम्हारे वियोग में जितने आँसू गिराएगी, उतना ही तुमको घोर नरक में जाना पड़ेगा। जो भी मिलता वह ऐसी ही बात करता था लेकिन हम उनसे कहा करते थे कि आपलोग ठीक कहते हो कि मुझे नरक मिलेगा लेकिन यह बताइये कि हम इस समय कहाँ पड़े हैं, नरक रूपी संसार में ही तो पड़े हैं। आखिर ये संसार भी तो एक नरक ही है। इससे ज्यादा नरक और क्या होगा ? अब नरक से छूटने का जो प्रयत्न किया जा रहा है, यह गलत-सही कैसा भी है, इसको प्रभु सही कर देते हैं। ऐसा भी मेरा मन कहता है। इस तरह जो लोग मेरे चित्त में द्वंद्व पैदा करते थे, वे थोड़े दिन में शांत हो गए। परिणाम हमने देखा और अनुभव किया, जैसा कि रामायण में कहा गया है –

प्रनत कुटुम्ब पाल रघुराई।

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – २०८)

शरणागत कैसा भी हो जैसे हमारी शरणागति तो सच्ची भी नहीं है, झूठ-मूठ की है लेकिन भगवान् शरणागत का ही नहीं बल्कि उसके समस्त कुटुम्ब का भी पालन करते हैं, कृपा कर देते हैं। अतः हमने यह भी अनुभव किया कि शास्त्र और महापुरुषों द्वारा कही हुई सभी बातें सत्य हैं। द्वन्द्व रहित एक विश्वास और आस्था होनी चाहिए। संसार में जितने लोग हैं, ये सब पशु हैं। भागवत में कर्दम ऋषि ने कहा है – (भागवत ३/२१/१७)

बड़ा कठोर शब्द प्रयोग किया गया है, जब तक मनुष्य इन पशुओं (सांसारिक लोगों अथवा परिवारीजनों) की बात मानता है, तब तक वह भगवान् के चरणों की छाया में नहीं पहुँच पाता है। ये संसारी पशुलोग अपने को बुद्धिमान समझते हैं और उपदेश देते हैं। जो लोग इन पशुओं को छोड़ देते हैं वे भगवान् की चरणों की छाया में आते हैं, उनकी पहचान है कि फिर वे कुछ और बात नहीं करते हैं। वे भगवान् के गुणानुवाद पीयूष को पाते हैं। गुणानुवाद पीयूष माने भगवान् का गुणामृत, कथामृत और नामामृत। वे इस अमृत को पीते हैं और इस झगड़े में नहीं पड़ते कि भविष्य में आगे-पीछे क्या होगा ? क्या सही है अथवा क्या गलत है ? ये सब छोड़कर गुणानुवाद पीयूष (कथामृत) पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त देहधर्मों को भी नहीं सोचना चाहिए कि क्या खाएगें-पियेंगे ? यह कर्दमजी ने एक सुलझी हुई बात कही है कि मनुष्य को शारीरिक और मानसिक परिस्थितियां, द्वन्द्व तथा लौकिक और पारलौकिक आदि का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए।

अर्जुन ने यही तो कहा था – गीता २/५

यदि हमें राज्य मिल भी जाएगा तो उसमें गुरुजनों की हत्या का खून लगा होगा। गुरुओं की हत्या के खून से भीगा हुआ राज्य क्या कोई कल्याण करेगा ? एक बहुत बड़ी शंका अर्जुन के मन में थी। गुरुहत्या का खून, उससे भीगा हुआ राज्य, दादा जी की हत्या का खून और सभी सगे सम्बन्धियों की हत्या का खून, पांच-छः पीढियां तक महाभारत में लड़ी थीं, उन पांच-छः पीढ़ियों की हत्या का खून और उस खून से भीगे राज्य को भोगने से क्या कल्याण होगा ? ये सब ऐसी शंकायें थीं जो कभी दूर नहीं हो सकती थीं; ये सब द्वन्द्व हैं। किसी प्रकार का भी द्वन्द्व यदि आता है, चाहे वह धर्म सम्बन्धी द्वंद्व हो, लोक सम्बन्धी द्वन्द्व ,परलोक सम्बन्धी द्वन्द्व हो, वह आदमी को हिला देता है, झकझोर देता है। लोग कहते हैं कि तुमने अपनी माँ को छोड़ दिया, उसका पाप तुमको लगेगा। ये सब चीजें ऐसी हैं जो चित्त में द्वन्द्व पैदा करती रहती हैं। भगवान् ने कहा कि जब मनुष्य द्वन्द्वों से छूट जाता है तब निभ्रांत चित्त से दृढ़व्रत के साथ भजन होता है। वे द्वन्द्व कब समाप्त होते हैं ? ये द्वन्द्व पाप हैं। घाव पर मक्खी बैठती है, कमजोर को सब लोग दाब देते हैं। जब मनुष्य के अन्दर कमियाँ आती है, अपने पापों के कारण सुदृढ़ निष्ठा नहीं हो पाती है, इसलिए भगवान् ने कहा कि पुण्य कर्म करते-करते जब पाप समाप्त हो जाते हैं तब द्वन्द्व ख़त्म हो जाता है। द्वन्द्व के मोह से छूटकर फिर वह दृढ़व्रत के साथ भजन करता है फिर उसके मन में कोई संशय नहीं आता है।

कवनिउ सिद्धि कि बिनु विस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा।।

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -९०)

बिना विश्वास के क्या कोई सिद्धि होती है ? हम समझते हैं कि दुनिया में लाखों में कोई एक व्यक्ति ही होता है जो द्वन्द्व रहित बात बोलता है, जिसका चित्त निर्द्वंद रहता है, जिसके हृदय में कोई संशय नहीं होता, कोई शंका नहीं होती। वह बाण की तरह चल पड़ता है, रुकता नहीं है।

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड - १)

जैसे - हनुमानजी बाण की गति से चले थे, इसीलिए श्रीमद्भागवत में कर्दम जी ने कहा कि संसारी पशुओं की बात सुनोगे तो ये पशु तुम्हारे चित्त में द्वन्द्व पैदा कर देगें – कहेंगे कि अरे ! तुमने अपनी माता को छोड़ दिया, पिता को छोड़ दिया, पति को छोड़ दिया, स्त्री को छोड़ दिया। ये सब चीजें सुनकर जीव के मन में द्वन्द्व पैदा होता है और उससे दृढ़ता नहीं आती है। इसी तरह धाम में भी द्वन्द्व पैदा हो जाता है। यहाँ रहते-रहते लोग अधिक जन संपर्क के कारण राग-द्वेष युक्त होकर निंदा-स्तुति में लग जाते हैं। इस प्रकार वे स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, दूसरों को भी नष्ट कर देते हैं। यह निश्चित देखा गया है कि कुसंगी, कुबुद्धि लोग दूसरे के हृदय में द्वन्द्व पैदा कर देते हैं। द्वन्द्व इतने मीठे ढंग से पैदा हो जाता है कि मनुष्य का विनाश ही हो जाता है इसलिए जब तक चित्त में किसी प्रकार का भी द्वन्द्व है तब तक दृढ़ता के साथ भजन नहीं होता। इसीलिए यदि आस्था के साथ भजन करना है तो उसके चित्त का द्वन्द्व रहित होना जरूरी है।

जब लोगों ने गोपीजनों से कहा कि यदि तू कृष्ण से प्रेम करेगी तो तेरा लोक चला जाएगा, घर से निकाली जाएगी । न पीहर की रहेगी, न ससुराल की और नरक भी भोगेगी । तब गोपियाँ उत्तर देती हैं –

जो मेरो यह लोक जायगो, अरु परलोक नसाय री ।
नन्द नन्दन को तऊ न छाँडूं, मिलूंगी निसान घुमाय री ।।

अब तो मैं चल पड़ी हूँ । लोक जाता है तो चला जाने दो, परलोक जाता है तो जाने दो । अब मेरे चरण पीछे नहीं लौटेंगे ।

नंदलाल सो मेरो मन मान्यो, कहा करेगो कोय री ।
हौं तो चरन कमल लिपटानी, होनी होय सो होय री ।।

जो होता है, हो जाने दो; विनाश होगा, हो जाने दो ।
संसार में हर आदमी द्वन्द्व पैदा करता है । माता-पिता, पति आदि सब त्रासते (डराते) हैं ।

गृहपति मात-पिता मोहि त्रासत, हँसत बटाऊ लोग री ।
अब तो यह ऐसी बन आई, विधना रच्यो संजोग री ।।

और तो क्या, दो पैसे के राहगीर भी मेरी हँसी उड़ाते हैं ।
लेकिन अब कुछ नहीं होगा । सर्वनाश होता है तो होने दो ।

यह तन फिर बहुरो नहीं पइए, वल्लभ वेष मुरार री ।
परमानंद स्वामी के ऊपर, सर्वस दीजै वार री ।।

यह ब्रज प्रदेश, यह श्याम का मिलन, क्या फिर कभी इसकी प्राप्ति होगी ? क्या लोकापवाद (बदनामी) से मैं पीछे हटूं ? साधक दृष्टि से भी देखा जाये तो क्या यह मनुष्य शरीर फिर कभी मिलेगा ? अच्छा है, इस शरीर को प्रभु को चढ़ा दिया जाय । गोपी कहती है – मैंने तो मुरारी कृष्ण को अपना वल्लभ (पति) मान लिया है । इस प्रकार धामनिष्ठ ब्रजगोपियों की नंदनन्दन श्यामसुन्दर में सुदृढ़ प्रीति थी ।

.....

गौ-सेवा में सावधानी

श्रीबाबामहाराज के सत्संग गौ-महिमा (२४/६/२०१२) से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका –साध्वी पद्माक्षी जी, मानमंदिर ,बरसाना

गौ सेवा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए । सेवक धर्म सबसे कठोर है । कठोर अर्थात् जिस पृथ्वी पर स्वामी पाँव से चलता है, उस पृथ्वी पर सेवक को पाँव से चलने का अधिकार नहीं है ।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ।।

सेवक वही है जहाँ स्वामी का चरण है और वहां सेवक का सिर है । रामायण की इस एक ही चौपाई में बहुत बढ़िया ढंग से सेवक धर्म का निरूपण किया गया है । सेवक कभी स्वामी के बराबर नहीं बैठता है, अगर बराबर बैठता है तो वह सेवक नहीं है । सेवक का धर्म है कि जिस पृथ्वी पर स्वामी चलता है उस पृथ्वी पर पाँव रखके न जाए, सिर के बल चला जाए । इसको सेवक धर्म कहते हैं । इसीलिए जब राम वन में चले गए तो भरत जी ने भी पृथ्वी के नीचे गुफा बनाई और उसी में रहे उन्होंने कहा कि जिस पृथ्वी पर हमारे स्वामी रहते हैं उस पृथ्वी पर हम पाँव कैसे दे सकते हैं ? हम तो सेवक हैं और पृथ्वी पर सिर के बल चलना हमारा धर्म है ।

सेवक सेव्य भाव बिन भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ।।

सेवक अथवा सेवा क्या है, पैसा देना सेवा नहीं है, शरीर से कर्म करना भी सेवा नहीं है । सेवक सेव्य भाव- सेवा का भाव हर समय हृदय में बना रहे, यदि भाव नहीं है तो सेवा नहीं है । हमने पैसा दिया, अहम् भाव हृदय आ गया तो यह सेवा नहीं है । शरीर से परिश्रम किया और अहं भाव आ गया तो यह सेवा नहीं है । भागवत के प्रथम स्कन्ध में कहा गया है –

तपः शौचं दया सत्यं .....(भागवत १/१७/२४)

स्मय अर्थात् गर्व या अहं आया तो तप नष्ट हो जाएगा, यहाँ तक कि भागवत में भी महारास लीला में वर्णन है कि भगवान् ने जब गोपियों का बहुत सम्मान किया तो उनके अन्दर मैंपना आ गया । जबकि गोपियों से अधिक भगवान् का प्रिय कौन हो सकता है – (भागवत १०/२९/४७) गोपियों ने देखा कि कृष्ण हमारे नचाये नाचते हैं, हमारी सेवा करते हैं, एक खिलौना बन गए हैं तो कृष्ण के सम्मान को प्राप्त करके गोपियों ने अपने आपको तीनों लोकों की समस्त स्त्रियों में सर्वाधिक गौरवशालिनी समझ लिया । स्मय (गर्व) आया तो सब प्रेम, तपस्या और सेवा समाप्त हो जाते हैं । गोपियों के सौभाग्य मद को देखकर भगवान् ने सोचा कि अभी तो महारास का प्रारम्भ ही है, सालों तक महारास चलेगा अतः अनर्थों के मूल इस मद को पहले ही समाप्त कर देना चाहिए ।
(भागवत १०/२९/४८) प्रशम अर्थात इस अहम् भाव को समाप्त करने तथा कृपा करने के लिए भगवान् गोपियों को छोड़कर अंतर्धान हो गए । जबकि गोपियों का कितना बड़ा त्याग था, भगवान् ने रास

में आने पर उन्हें लौट जाने के लिए कहा फिर भी वे वापस नहीं गयीं । श्रीकृष्ण ने कहा – (भागवत १०/२९/२०)

भगवान् ने उन्हें दिखाया कि देखो तुम्हारी माताएं रो रही हैं, तुमको ढूंढ रही हैं, चिल्ला रही हैं कि बेटी तू कहाँ है ? तुम्हारे पिता लोग तुमको जंगल में ढूंढ रहे हैं, पुकार रहे हैं – पुत्री ! तू कहाँ है ? तुम्हारे भाई लोग ढूढ रहे हैं और पुकार रहे हैं- अरी बहन ! तू जंगल में किस स्थान पर है ? जिनके पति थे वे सब रो रहे थे । श्री कृष्ण ने गोपियों से कहा कि तुम इन सबको कष्ट मत दो, जाओ अपने घर चली जाओ । भगवान् ने गोपियों से यह बात परीक्षा के लिए कही थी और यह बात शुकदेव जी ने स्वयं कहा - (भागवत १०/२९/१७)

भगवान् जो गोपियों को लौटा रहे हैं तो सच में नहीं लौटा रहे हैं, वे गोपियों को मोह में डाल रहे हैं जिससे वे घर लौट जाएँ, परीक्षा ले रहे हैं । प्रह्लाद जी ने भी नृसिंह भगवान् से कहा था कि आप मुझे जो वरदान देने की बात कह रहे हैं, ऐसा लोभ आप मुझे मत दीजिये – (भागवत ७/१०/२) मैं तो जन्म से ही संसार में आसक्त हूँ लेकिन आपने ऐसा क्यों कहा, आप लोभ नहीं दे रहे हैं । आप तो भगवान् हैं, परम दयालु हैं, परम कृपामय हैं । (भागवत ७/१०/३)

जैसे चावल बनाने वाली बटलोई से एक चावल को निकाल कर मसलती है । चावल अगर मसल जाता है तो वह जान जाती है कि चावल पक गया है उसी तरह आप भी भक्तों के लक्षण जानने के लिए ऐसी बातें कहा करते हैं । (भागवत ७/१०/४) नहीं तो करुणा वाला भगवान् क्या भोग, स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति देगा, ऐसा कभी नहीं हो सकता । भगवान् तो इनसे छुड़ाता है । सुदामा चरित्र में यही बात सुदामा जी ने कही थी कि भगवान् सदा अपने दास को माया से छुडाते हैं । यह माया दोष युक्त है -

एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा |

यह दुखरूपा माया है ।

अतिसय प्रबल देव तव माया । छूटहि नाथ करहु जो दाया ।।

यह अतिशय प्रबल, दुःख देने वाली माया है । यह भगवान् की कृपा होने पर ही जीव को छोड़ती है । माया काली सर्पिणी से भी हजारों गुना अधिक भयंकर है । इसका विष कभी नहीं उतरता है ।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ।।

भगवान् का स्वभाव है कि भक्त के अन्दर यदि अहम् भाव आया तो उसे तुरंत नष्ट कर देते हैं ।

संसृति मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ।।

चौरासी लाख योनियों में जाने का मूल कारण यही अहंकार है । यह माया से उत्पन्न होता है । माया जीव को दारुण दुःख देती है । जब भगवान् की कृपा होती है तब वह माया से मुक्त होता है । माया के कारण जीव अनन्त दुःख प्राप्त करता है । जब भगवान् देखते हैं कि यह जीव तो अनन्त विपत्ति के सागर में चला गया, अब कभी इससे बाहर नहीं निकलेगा ।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ।।

बहुत कृपा होती है भगवान् की, अनन्त कृपा होती है जब वह देखते हैं कि जीव के हृदय में एक ऐसा नासूर (फोड़ा) उत्पन्न हो गया है जो इसको खा जाएगा, कैंसर भी जिसके सामने कुछ नहीं है ।

जिमि सिसु तन वृण होई गुसाँईं । मातु चिराव कठिन की नांई ।।

किसी माँ के बेटे के शरीर में जब बहुत बड़ा फोड़ा हो जाता है तो माँ उसका हाथ पकड़ कर डॉक्टर के द्वारा उसका ऑपरेशन करवाती है, चीरा लगवाती है । बच्चा रोता है, चीखता चिल्लाता है लेकिन माँ इसकी परवाह नहीं करती है और डॉक्टर से कहती है कि इसका ऑपरेशन करो ।

जदपि प्रथम दुःख पाव रोवइ बाल अधीर ।
व्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ।।

भगवान् का करुणामय स्वभाव है । गोपियाँ उनको अत्यधिक प्रिय थीं फिर भी भगवान् उन पर कृपा करने के लिए, उनका सौभाग्य मद चूर्ण करने के लिए अंतर्धान हो गए । (भागवत १०/२९/४७)

उस समय गोपियों को इतना अधिक कष्ट हुआ जैसे गजराज के जाने पर सैकड़ों हथिनियां क्रंदन करती हैं, चिग्घाड़ करती हैं । हाथी और हथिनी का प्रेम प्रसिद्ध है । सिंह जब हाथी को मार देता है तो उसके विरह में हथिनियां बहुत भयानक क्रंदन करती हैं, चिग्घाड़ती हैं । उसी प्रकार विरहावेश में गोपियाँ करूण क्रंदन करने लगीं । वस्तुतः प्रेम में अहम विष है, उसको नष्ट करना आवश्यक है क्योंकि वह प्रेम रूपी ताप को जला देता है । भरत जी को राम के विरह में कितना कष्ट हुआ लेकिन भगवान् को प्रेम रूपी माखन प्रकट करना था ।

भरत पयोधि गंभीर.....

इसलिए भगवान् ने भरत रूपी समुद्र को मथा । जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत की मथानी बनाई गई और उस मथानी के द्वारा समुद्र को मथा गया उसी प्रकार भगवान् ने समुद्र मंथन की तरह भरत रूपी समुद्र का मंथन किया, विरह रूपी मन्दराचल की मथानी को डालकर । भरत जी ने चौदह वर्ष तक ऐसा दुष्कर तप किया जो जंगल में भी नहीं हो सकता था । इतना बड़ा तप कोई नहीं कर सकता, ऐसा उन्होंने इसलिए किया ताकि प्रेम रूपी माखन प्रकट हो जाए । हम जैसे लोग जो सुविधावादी हैं, भोगवादी हैं, भक्तिमार्ग में भी आकर शरीर की सुविधाएँ ढूंढते रहते हैं । ए.सी. या कूलर नहीं मिलता तो चिल्लाने लगते हैं । यह हमलोगों की कमजोरियां हैं । प्रेम रूपी समुद्र से मक्खन तभी प्रकट होता है, जब उसको मथा जाता है । समुद्र मंथन से भी अधिक कठिन है कि विरह रूपी मथानी द्वारा भावनाओं का मंथन किया जाए तब उससे प्रेम प्रगट होता है । भगवान् ने भी यही किया । श्री कृष्ण के विरह में गोपियों का विशाल समूह करूण क्रन्दन कर रहा है. ऐसा विरह आज तक देखा नहीं गया । गर्ग संहिता में लिखा है कि नल के विरह में दमयन्ती का जो विरह था, उससे हजारों गुना अधिक विरह सीता जी का था और उससे भी

हजारों गुना अधिक विरह गोपियों का था। उनके हृदय में ऐसा तीव्र विरह उत्पन्न हुआ कि वे वृक्षों से, लताओं से, वृन्दावन की भूमि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगीं।

नवेलि हे चमेलि तू प्रफुल्ल है द्रुमान में –

हे चमेली ! तेरे अन्दर इतने पुष्प कैसे आ गए ? श्रीकृष्ण ने तेरा स्पर्श किया है।

बिना पीया मिले अरी न फूल हों हियान में।
बता कहाँ कन्हाई री हमे न चैन प्राण में।।
पुकारती हरि-हरि हरी-हरी लतान में।

कोई भी वृक्ष सामने आता, गोपियों उससे लिपट जातीं। चमेली से लिपट गयीं, तुलसी से लिपट गयीं, गोपियाँ वृक्षों से कहने लगीं - अरे वृक्षों ! तुम तो परोपकार के लिए तपस्या करते हो, तुम बताओ कृष्ण कहाँ हैं ? वृन्दावन की धरती से पूछा - हे भूमि ! तुम बताओ कृष्ण कहाँ हैं ?

गोपियों का ऐसा उत्कट विरह प्रकट हुआ कि उसमें सम्पूर्ण अहं जल गया। उनके अहं को जलाने के लिए भगवान् ने विरह की लीला की। यह भगवान् की कृपा होती है जब भगवान् विरहाग्नि में समस्त दोषों को जला देते हैं। श्रीमद्भागवत में रासपंचाध्यायी के प्रारंभ में यही बात कहा गई है कि जब गोपियों को रास में श्रीकृष्ण के पास जाने से रोक दिया गया था, भवन में बंद कर दिया गया, उस समय गोपियों ने श्रीकृष्ण का जो ध्यान किया और उस ध्यान में उनको जो आनन्द प्राप्त हुआ इससे उनके पुण्य जल गए। (भागवत १०/२९/१०) पुण्य भी बंधन है और पाप भी बन्धन है। पुण्य करोगे तो भोग मिलेगा, सुख मिलेगा, लड्डू पेड़ा मिलेगा, यह तुम्हारे प्रेम को नष्ट कर देगा। जब गोपियों ने विरह में कृष्ण का ध्यान किया और ध्यान में श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उसके पहले विरह की ज्वाला में उनके सब पाप नष्ट हो गए। जितने भी प्रेम के प्रतिबंधक तत्व थे, वे सब जल गए और अहं भी जल गया। एक ऐसा विरह जनित ताप प्रकट हुआ जिससे गोपियों के समस्त अशुभ जल गए। इसीलिए भगवान् ने कहा है – (गीता१८/५) यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप- ये तीनों ही कर्म मनीषियों को भी पवित्र करने वाले हैं।

आज हमारा समाज तप (कष्ट) से घबराता है। जरा भी अगर बिजली न आये तो लोग घबरा जाते हैं कि हम रात को कैसे सोयेगें, कैसे रात कटेगी ? हमलोग कमजोर हो गए हैं क्योंकि हममें तप नहीं है, भगवान् का विरह नहीं है। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना' यह हमारे जीवन में नहीं है केवल कथाओं में चिल्लाने के लिए है यह श्लोक। इसलिए सेवा बहुत कठिन है। भरत जी ने इसीलिए कहा कि -

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।

इस चौपाई को अगर हम समझ लें तो भक्ति आ जाए। भरत जी कहते हैं कि जिस धरती पर तुम्हारा स्वामी पाँव देकर चल रहा है उस पृथ्वी पर पैर रखकर चलने का तुम्हारा धर्म नहीं है। इस पृथ्वी पर सेवक को पाँव के बल नहीं अपितु सिर के बल चलना चाहिए। यह सेवा भाव है, सेवक धर्म है। ऐसी भावना, ऐसा त्याग, ऐसा कष्ट किसके हृदय में है, यह दिखाई नहीं पड़ता है।

गो सेवा बहुत कठिन चीज है। इसीलिए गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ गोविन्द लीलामृत में भगवान् कृष्ण ने अपनी माँ यशोदा से कहा - माँ ! जब गौ माता छतरी नहीं लगाती है, जूती नहीं पहनती है तो हम लोग कैसे छतरी लगा सकते हैं, कैसे जूते पहन सकते हैं। यह हमारा धर्म नहीं है। हमलोग तो गौ माता के सेवक हैं। गोपाल की यह बात सुनकर यशोदा मैया प्रसन्न हो गई और बोली कि अब हमारे गोपवंश की वृद्धि होगी क्योंकि कन्हैया के हृदय में सेवा भाव आ गया है। यशोदा ने पुत्र के मोह में कन्हैया की बात का खण्डन नहीं किया कि नहीं, तू तो जूते पहनकर गौचारण के लिए जा, छतरी लगाकर जा। गोपाल की बात का यशोदा ने समर्थन किया क्योंकि यशोदारानी बहुत बड़ी भक्त थीं और उन्होंने कहा कि हम गोपवंश के हैं, हम गाय की भक्ति से चले हैं और इससे भगवान् प्रसन्न होता है। अब प्रश्न ये है कि जो लोग गौसेवा में भाव नहीं रखते और गौशालाओं में पैसे का दुरुपयोग होता है, गौशाला वाले ही गाय के चारे को बेचकर खा जाते हैं। कुछ सालों पहले बिहार के एक मुख्यमंत्री के ऊपर चारा घोटाला का यह फल रहा कि उनका मुख्यमंत्री पद चला गया, उनकी गद्दी चली गयी। वह यहाँ गह्वरवन में उस समय श्रीबाबामहाराज के पास आये थे और बाबा महाराज ने सबके बीच में कहा था कि आपके ऊपर बहुत कलंक है, इस कलंक को दूर करो। बस इतना ही कहा था, उसके बाद वह मन्त्री यहाँ से चले गये और उनका मन्त्रिपद चला गया। उनका मन्त्रीपद क्यों चला गया ? क्योंकि उन्होंने गायों के चारे का स्वयं घोटाला किया था , उसका प्रत्यक्ष चमत्कार यह हुआ कि उस लोभी मंत्री की राजगद्दी चली गयी। इसलिए गौ-सेवा में हमें बहुत सावधानी से चलना चाहिए। एकबार गौ माता के प्रति अपराध जनकजी पर भी लागू हो गया था। महाराज जनक ब्रह्मज्ञानी थे , रामजी के ससुर थे , मृत्यु के पश्चात् जब उनका परलोक गमन हुआ तो भगवान के दूतों ने कहा कि थोड़ी देर के लिए आपको नरक के पास से होकर चलना है। नरक में जाना तो नहीं है किन्तु नरक के निकट से होकर गुजरना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा विधि का विधान है। जनक जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि ऐसा क्यों है , मेरी समझ में तो आज तक मैंने कभी कोई अपराध या पाप किया नहीं है। मुझे बताया जाए कि मेरे किस कर्म का यह दण्ड है ? भगवान् के दूत बोले कि अनजान में आप के द्वारा गौमाता के प्रति अपराध हो गया था। जनक जी ने पूछा , कैसे ? भगवान् के दूत

बोले – एकबार एक गाय किसी के खेत में चर रही थी तो आपने अपने हाथ से उसको हटा दिया क्योंकि वह किसी गरीब आदमी का खेत था। इसलिए गाय को खेत में चरने से रोकने के कारण आपको नरक से होकर निकलना पड़ेगा। चरती हुई गाय को हटाने का धर्म नहीं है। थोड़ी सी भूल आपके द्वारा हो गई।

जनकजी बोले - अच्छा चलो ! नरक में तो पापियों को बहुत यातनायें दी जाती हैं, बड़ा कष्ट मिलता है नरक में। जब जनकजी नरक के पास से होकर निकले तो उनके अंग की वायु के स्पर्श से नरक के समस्त प्राणियों का कष्ट दूर हो गया। नरक में अत्यन्त भीषण यातनायें दी जाती हैं तो असह्य वेदना के कारण पापी लोग चिल्लाते हैं। जनकजी ने देखा तो कहा , जल लाओ। भगवान के दूत बोले - क्यों ? जनकजी ने जल मँगाकर लिया और कहा कि अब तक मैंने जो भी सत्कर्म किया / पुण्यकर्म किया या भक्ति की है , उसका फल मैं इन नरक के प्राणियों को प्रदान करता हूँ ताकि इनका कष्ट दूर हो जाये। जनकजी के द्वारा ऐसा संकल्प करते ही तुरन्त नरक के समस्त प्राणियों का कल्याण हो गया। सबकी यातनायें समाप्त हो गयीं। तब भगवान के दूतों ने उनको कहा कि अब चलिये। जनकजी बोले - अब तो मैं नहीं जाऊँगा। इनके कष्टों को देखकर मैने अपना समस्त पुण्यकर्म इनको अर्पित कर दिया। भगवान के दूत बोले कि आपने तो अपना पुण्य दे दिया परन्तु पाप, पाप को पैदा करता है, पुण्य, पुण्य को पैदा करता है और पैसा, पैसे को पैदा करता है।

money begets money .

आपने जो इतना बड़ा दान किया, इससे आपका पुण्य अनन्त हो गया। अब आप यहाँ नहीं रह सकते है, विधि के विधान को नहीं तोड़ना चाहिए। आपको अनन्त पुण्य का लोक मिलेगा क्योंकि इतना बड़ा कल्याण किया। इसलिए जनक जी को नरक से जाना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि गाय का अपराध जनक जी को भी लग गया था। गौ अपराध में अधर्म की वृद्धि हो रही है क्योंकि कलियुग और गाय का कष्ट एक है। जब परीक्षितजी ने दिग्विजय किया था तो देखा कि एक बैल जिसकी तीनों टांगे टूट गयी हैं और चौथी टूटने वाली है और एक शुद्र राजा उस बैल और गाय पर प्रहार कर रहा है, वह कलियुग था। शुद्र राजा के रूप में वह गोवंश को कष्ट दे रह था। जिस समय भाव सहित गो सेवा होती है , भाव कठिन चीज है गाये को चारा डाल देना आसान है, गो सेवा के लिए धन दे देना आसान है लेकिन भाव से सेवा करना अलग है। यह प्रसन्नता का विषय है कि मानमन्दिर की माताजी गौशाला में मानमन्दिर के साधु और साध्वियां निष्किंचन भाव से गौ-सेवा करते हैं। लोग गौशाला में धन का दान कर देते हैं लेकिन गाय का गोबर स्वयं उठाकर फेंकना, गाय को चारा डालना उनसे नहीं हो सकता। ये सामर्थ्य उनमें नहीं है। मानमन्दिर की माताजी गौशाला की वायु ही ऐसी है की यहाँ कोई नया से नया व्यक्ति भी आता है तो गौ-सेवा धर्म में फँस जाता है। दो, तीन महीने पहले कुछ लडकियाँ दिल्ली से बाबा महाराज के दर्शन करने आयी थीं और उन्होंने बाबा से कहा था कि कुछ दिन यहाँ रहकर हमलोग चली जायेंगी। श्रीबाबा ने पूछा - क्यों जायेंगी ? उन्होंने उत्तर दिया कि इन्टरव्यू देना है। बाबाश्री ने समझा कि शायद किसी नौकरी के लिए इन्टरव्यू देना होगा लेकिन उन्होंने बताया कि हमें गुरुदीक्षा लेने के लिए इन्टरव्यू देना है। श्रीबाबा महाराज बोले – 'ऐसा तो हमने पहली बार सुना कि गुरुदीक्षा भी इन्टरव्यू देने के उपरान्त होती है।' भारतवर्ष के किसी प्रसिद्ध संस्थान में ऐसा नियम है। पन्द्रह-वीस दिन रहने के पश्चात् उन बालिकाओं ने कहा कि अब हम लोग इन्टरव्यू देने नहीं जायेंगी | तो बाबा ने पूछा - क्यों ? उन्होंने जवाब दिया कि इन्टरव्यू के लिए जाने पर हमारी गौ-सेवा छूट जायेगी। इन दोनों बालिकाओं पर श्रीजी की कृपा हो गयी और वे गायों की सेवा करने लगीं , गायों की चिकित्सक बन गयीं और भाव से बीमार गायों की सेवा करने लगीं। इनके हृदय में गौ-सेवा के प्रति उत्कट भाव का उदय हुआ। उस भाव के कारण उन्होंने गुरुदीक्षा हेतु अन्यत्र इन्टरव्यू जाने हेतु इन्कार कर दिया। यदि सेवा के भाव हृदय में आ जाएं तो इसकी इतनी महिमा है कि यदि भगवान् भी सामने आ जाये तो उनसे मत बोलो। वल्लभ सम्प्रदाय की वैष्णववार्ता में एक कथा है कि एक भक्त थे जिनका नाम था गोपीनाथ दास ग्वाल। वैष्णववार्ता संख्या -३६ में इनकी कथा का वर्णन है। गोपीनाथदास जी ग्वाल, ग्वाल का अर्थ ही है कि जो गायों की सेवा करता है। इन्होंने ब्रज में आकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से गुरुदीक्षा ली और उनकी रुचि गौ-सेवा में थी। दूसरे वैष्णव थे गोपालदास, उनकी रुचि ठाकुरजी की सेवा में थी। आचार्य लोग रुचि देखकर के सेवा देते हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने गोपालदास से पूछा कि तुम क्या करोगे तो वह बोले कि मैं तो ठाकुर सेवा करूँगा। गोपीनाथदास जी ने कहा कि मुझको गौ-सेवा दे दीजिये। गोस्वामी जी ने कहा कि ठीक है तुम गौ-सेवा करो। गुरुदेव की आज्ञानुसार गोपीनाथदासजी गौ-सेवा करने लगे। उन्होंने ऐसी गौ-सेवा की कि वह गोपालदास से आगे चले गए। प्रभु-सेवा करने वाले पीछे रह गए। ये गौ-सेवा ऐसी करते थे, जैसे - बालक माँ की सेवा करता है, बच्चा अपनी माँ के लिए सुन्दर बिस्तर लाता है, माँ को सुलाता है तो वैसे ही जहाँ गौमाता रहती थीं वहां कंकड़-पत्थर झाड़ करके स्वच्छ रखते थे, गोबर इत्यादि कोई भी वहां गंदगी नहीं रहती थी और उसके पीछे इन्होंने एक दिन की बात थी भोजन नहीं किया, कई दिन तक भूखे रहे तो श्रीनाथजी स्वयं इनके पास पहुँचे, गोपीनाथ ! गोपीनाथदास !! तूने भोजन नहीं किया, प्रसाद लेने नहीं गया। ग्वारिया के लिए पत्तल बंधी रहती है तो भगवान् बोले कि पत्तल नहीं लाया। गोपीनाथजी बोले – हाँ नाथजी ! मैं पत्तल लेने नहीं गया, पत्तल लेने जाता तो हमारी सेवा छूट जाती। ठाकुरजी हँस गए, समझ गए कि ये सच्चा सेवक है और बोले कि

भूख लगी है तुझको । उन्होंने कहा कि हाँ, नाथ जी ! भूख तो लगी है, नाथ जी बोले - अच्छा, तो देख मैं तेरे लिए आठ लड्डू लाया हूँ । वल्लभकुल में बंटा भोग होता है उसमें मोटे-मोटे लड्डू रखे जाते हैं, एक लड्डू खा लो उसी में काम चल जाएगा । श्रीनाथ जी चोरी से लाये थे लड्डू, जैसे - खीर चोरा गोपीनाथ का मंदिर है, उसमें ठाकुर जी ने खीर की चोरी किया था अपने भक्त माधवेन्द्रपुरी के लिए । तो ठाकुर जी ने आठ लड्डू निकाले मोटे-मोटे, बोले - ले इसको रख ले और खा लेना, उसने ले लिया झोली पसार करके पूरा गठ्ठर बन्ध गया आठ लड्डुओं का और भोजन नहीं किया, लड्डू ले करके वह गोसाईं जी के पास पहुंचा क्योंकि बिना गुरु की आज्ञा के हम कैसे खायें । गोसाईं जी ने कहा कि ये कहाँ से लाया ? गोपीनाथ बोले कि मैं लाया नहीं, ये तो नाथ जी ने दिये, ये चोरी का माल है, गोसाईं जी बोले – अच्छा ! किसने चोरी किया ? गोपीनाथ बोले कि नाथजी ने । गोसाईं जी ने कहा कि अरे ! नाथ जी लाये तेरे लिए तो तू खा ले गोपीनाथ, तू भूखा है । इन्होंने कहा कि हाँ भूखा तो हूँ लेकिन आपकी आज्ञा के बिना कैसे खाता ? गोसाईं जी बोले कि जब तुझको नाथ जी ने दिया है तो अवश्य ही खा ले । फिर उन्होंने लड्डू खाना शुरू किया, एक-दो लड्डू में पेट भर गया बाकी सब रख लिया दूसरे दिन के लिए जब भूख लगेगी ।

उस समय वर्षा का अवसर था और ऐसे समय में गौ सेवा की ज्यादा जरूरत पड़ती है क्योंकि बारिश में गाय गोबर में फँस जाती हैं |

उसके बाद गोपालदास के ऊपर भी भगवान् ने कृपा किया किन्तु दूसरे ढंग से किया । गोपीनाथदास के लिए तो ठाकुर जी ने चोरी किया किन्तु गोपालदास के लिए चोरी तो नहीं किया, उससे बोले – गोपालदास ! हमको भूख लगी है । गोपालदास ने कहा - नाथ जी ! दोपहर का समय है आपको भूख लगी है ?

ग्रीष्म ऋतु की दोपहरी में गाय चराने वाले ग्वारिया धूप में जाते हैं, गरम हवा चलती है, यह तपस्या है । श्रीठाकुरजी भी इस तपस्या को करते थे और कष्ट सहते थे । ब्रजगोपियाँ कहती हैं – (भागवत १०/३१/११) हे श्यामसुन्दर ! जब तुम गौ-चारण करने के लिए वन में जाते हो तो नील कमल से भी सुन्दर तुम्हारे चरण हैं और नंगे पाँव से तुम चलते हो तो जंगल में काँटे, कंकड़ और नुकीली घासें हैं, वे तुम्हारे चरणों में चुभ जाती हैं, क्या तुमको कष्ट नहीं होता ? गोपाल बोले – नहीं, क्या माता की सेवा में कोई कष्ट होता है । गोपियाँ बोलीं - हमको तो कष्ट होता है कि हमारे नाथ होकर तुम काँटों में, कंकडों में घूमा करते हो ।

वृन्दावन का रसिक कौन है ? कुम्भनदासजी ने लिखा है –

कोटि मुक्ति सुख होत गूखरू जबै लगै गड़ि पायन ।

जब ब्रज का काँटा गूखरु चुभ जाता है तो उस समय हमें करोड़ों मुक्ति के समान सुख होता है | उसको ब्रज रसिक कहा गया जिसको कांटे चुभने में करोड़ों मुक्ति से ज्यादा सुख मिले उसको ब्रज रसिक कहा गया । कुम्भनदास जी कहते हैं कि वही रसिक है । हम जैसे लोग कैसे रसिक हो जायेंगे जो बिजली चली गयी, बिजली नहीं आई तो हार्ट फेल हो जाता है, हम कैसे रसिक बन सकते हैं, ऐसे रसिक बहुत हैं जो ए .सी. में लेटे हैं और जिनको कोई चिंता नहीं है, जिनका सुविधावादी जीवन है, केवल भाषण देकर रसिक बन गए । स्वामी हरिदास ने कहा है -

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सों ।

वैराग्य करो, करुवा से प्रेम करो । **'ब्रज बीथिन दीजै सोहनी'** और ब्रज-वृन्दावन में जाके बुहारी लगाओ, जाने किस गली से राधारानी आ जायेंगी, इस भाव से बुहारी लगाओ ।

गो गो सुतन सों, मृगी मृग सुतन सों ।

ब्रज की गायों और बछड़ों से प्यार करो, हिरणों से, हिरणों के बच्चों से प्यार करो । **और तन नेक न जोहनी ।**

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्ज बिहारी जो सिर पे दोहनी ।।

इसको रसिक कहते हैं, उसको रसिक नहीं कहते हैं जो सुविधावादी जीवन रहा हो । भगवान् राम ने साकेत धाम जाते समय भक्तों के हृदय में अपने उन चरणों को स्थापित किया जिनमें दण्डकारण्य के कांटे लगे हुए थे ।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।

स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ।। (भागवत ९/११/१९)

राम ने कहा - मेरे उन चरणों का ध्यान करो जिनमें कांटे लगे हुए हैं, मेरे उन चरणों को ध्यान मत करना जो मखमल की गद्दी पर रखे हैं । रसखान जी रसिक थे जिन्होंने कहा है कि मैं श्याम सुन्दर की लकुटी और कामरिया पर तीनों लोकों के राज को न्योछावर करता हूँ । **या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।**

आठहूँ सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ।

रसखान जी के अनुसार गौ सेवक वह है जो आठों सिद्धि और नौ निधियों के सुख को गौ सेवा के लिए छोड़ देता है वह केवल भाषण नहीं देता है । रसखान जी कहते हैं कि ब्रज में जाओ तो वहां के सरोवरों, पर्वतों और वनों का दर्शन करो यही ब्रज है । हम लोग तो केवल कोठियों में पड़े रहते हैं, इसको ब्रजवास नहीं कहते हैं ।

रसखान जी कहते हैं कि ब्रजवास हेतु ब्रज के करील (कांटे) के ऊपर मैं कोटि-कोटि सोने के महलों को न्यौछावर करता हूँ ।

रसखान कबै इन नैनन सों ब्रज के वन बाग तडाग निहारौ ।

कोटिक हू कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारों ।

जब हम सोने की हवेलियों का त्याग कर देगें तब कृष्ण भाव आएगा, तब गौ सेवा का भाव आयेगा ।

श्री हरिवंश अनत सचु नाहीं बिन या रजहि लिए ।

जितने भी ब्रज के प्राचीन रसिक हुए हैं, उनकी रहनी कितनी विलक्षण थीं और आज के रसिकों की रहनी बिलकुल अलग है । उनकी रहनी सच्ची थी । आज के रसिकों की रहनी सुविधावादी है ।

गोपीनाथ ग्वाल की सच्ची सेवा के कारण श्रीनाथजी ने उसके लिए लड्डू चुराए और गोपालदास के लिए लड्डू नहीं चुराए । लेकिन गोपालदास को भी उन्होंने अनुभव कराया, उससे बोले - गोपालदास ! दोपहर है बड़ी धूप है मुझे बड़ी भूख लगी है । गोपालदास ने गोस्वामी विट्ठलदास जी से कहा कि ठाकुर जी भूखे हैं । गोस्वामी जी ने कहा कि जल्दी से शीतल पदार्थ बनाओं और उनको भोग लगाओ । शीतल भोग बनाया गया और गोस्वामी जी भी साथ में गए क्योंकि गिरिराज जी के आसपास श्यामढाक, गाठोली आदि गोचारण की भूमि है, वहां गोपाल जी गाय चराते हैं । बरसाने के आसपास भी गह्वरवन, राबड़वन, पाडरवन आदि गोचारण की स्थलियाँ हैं, यहाँ श्रीजी विचरण करती हैं । गोपालदास गोसाईं जी को ठाकुरजी के पास ले गया । ठाकुर जी गोपालदास से बोले कि गोसाईं जी वृद्ध हैं, उन्हें क्यों कष्ट देते हो ? गरम लू चल रही है और ऐसे में यहाँ लाये हो । गोपालदासजी बोले कि आपको इनके हाथ से प्रसाद पाना पसंद है इसलिए इनको यहाँ बुलाया है । इसमें अन्तर ये है कि गौ सेवक के लिए ठाकुर जी स्वयं चोरी करते हैं और अपने सेवक के लिए ऐसा नहीं करते हैं ।

गर्गसंहिता में कथा है कि विजय नामक एक दक्षिण भारत का ब्राह्मण था । ये सब कथाएं सही हैं और पौराणिक हैं । विजय नाम का ब्राह्मण अपना पैसा ब्रज में व्याज पर उठाता था, वह ब्रज में वसूली करने आया था । वह जब मथुरा से पैसा वसूल करके चला और गिरिराजजी की परिक्रमा के लिए आया तो उसके सामने एक राक्षस आया, उसके तीन पाँव छः भुजाएं और तीन सिर थे, वह बड़ा भयंकर था । वह विजय को खाने के लिए दौड़ा । विजय ने अपनी रक्षा के लिए गिरिराज जी की एक शिला उठाई और राक्षस के ऊपर प्रहार किया, शिला का स्पर्श होते ही वह कृष्ण रूप बन गया, इससे गिरिराज जी की महिमा प्रकट होती है । उसी समय उस राक्षस को लेने के लिए गोलोक धाम से एक विमान आया । जैसे ही वह राक्षस गोलोक धाम जाने को तैयार हुआ तो विजय ने उससे पूछा कि तुम कौन हो, अभी तो तुम राक्षस थे और तुरंत ही तुम्हारा रूप कृष्ण की तरह हो गया, ऐसा कैसे हो गया, तुम अपनी जीवनी मुझे बताओ । वह राक्षस तो गिरिराज जी की शिला के स्पर्श से भगवत्स्वरूप हो गया था, अतः उसके हृदय में दया आ गयी थी, उसने कहा - पूर्व जन्म में मैं एक वैश्य (बनिया) था और पैसे को ही भगवान् समझता था । पैसे वाले भोगी होते हैं अतः मैं भी एक वैश्या में आसक्त हो गया और उसके चक्कर में ऐसा फँसा कि अपनी सती स्त्री के शरीर को तलवार से काट डाला क्योंकि वह वैश्या मेरी पत्नी के सारे आभूषण चाहती थी । उस वैश्या को प्रसन्न करने के लिए मैंने अपनी पत्नी की हत्या कर दी, उसके बाद मैंने और भी बहुत सी हत्याएं की । ब्राह्मण का द्रव्य और गाय का द्रव्य नहीं खाना चाहिए लेकिन मैंने ये सब खाया । (आजकल के गौशाला वाले ऐसा ही करते हैं, गौ सेवा के लिए आया हुआ धन गो सेवा में नहीं लगाते हैं, स्वयं हड़प लेते हैं । एक दिन उनके पाप का घड़ा फूटता जरूर है ।) उस राक्षस ने बताया कि मैंने गो सेवा का धन, ब्राह्मणों का धन खाया, अन्याय से धन कमाया । एक दिन मैं जा रहा था तो रास्ते में एक काले सर्प ने मुझे काट लिया और मेरी मृत्यु हो गयी । अकाल मृत्यु होने पर यमदूत मुझे लेने आये, बोले कि तेरे ऊपर चारा घोटाला का केस है इसलिए चल नरक में । वे यमदूत मुझे कुम्भीपाक नरक में ले गए जहाँ पापियों को खौलते हुए तेल में औटाया जाता है । एक मन्वंतर (तीस करोड़ वर्ष) तक मुझे यह सजा दी गयी । उसके बाद तप्तसूरमी नरक में डाला गया जहाँ लोहे की बड़ी-बड़ी सलाखें शरीर में घुसाई जाती हैं । एक कल्प (चार अरब वर्ष) तक मुझे तप्त सूरमी नरक में सजा दी गयी । उसके बाद चौरासी लाख योनियों में मेरा जन्म हुआ । दस जन्म तक मैं सुअर बना और सौ जन्म तक चीता बना, एक हजार जन्म तक ऊंट बना, दस हजार जन्म तक सर्प बना उसके बाद फिर राक्षस बना, राक्षस बनकर एक शूद्र के शरीर में प्रवेश करके तुम्हारे ऊपर हमला किया लेकिन तुमने गिरिराज जी की शिला से मेरे ऊपर प्रहार किया तो गिरिराज-शिला के स्पर्श होते ही मेरा उद्धार हो गया । हे विजय ! गिरिराज जी की महिमा का वर्णन ब्रह्मा जी भी नहीं कर सकते हैं ।

इस कथा का वर्णन इसलिए किया गया कि गौ-सेवा में सावधानी रखनी चाहिए, यदि गौ-सेवा में सावधानी रखेंगे तो भगवान् हमारे लिए भी लड्डू चुरायेगें, हमारे योगक्षेम को धारण करेगें । ये सब कथाएं सत्य हैं । भगवान् योगक्षेम धारण कर ही रहे हैं क्योंकि हमारी माताजी गौशाला में गौसेवा का प्रतिदिन का खर्च बीस लाख रुपये से अधिक है और ये धन किसी से माँगा नहीं जाता, केवल ठाकुर जी ही इस गौशाला को चला रहे हैं । जब तक यहाँ गौ-सेवा भक्ति-भाव से होती रहेगी तब तक आराम से यहाँ का खर्च चलता रहेगा । बड़े भाग्य से हमलोगों को गौ-सेवा मिली है, उसे भाव से करना चाहिए । गौ सेवा को व्यवसाय नहीं बनाना चाहिए, गौ सेवा अपने शरीर के स्वार्थ के लिए मत करो । माताजी गौशाला में प्रायः अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन चलता रहता है, यह गौ-सेवा यज्ञ की पूर्ति करने वाला है ।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (११/१/२०१२) 'श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-२' से संग्रहीत
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी देवश्री जी, मानमंदिर ,बरसाना

हरियशगान से पावनयश-प्राप्ति

रामायण में लिखा है – **"पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ।।"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

एक पावन यश होता है । पावन यश भक्तों का होता है क्योंकि वे पुण्य (भक्ति) करते हैं । बिना अघ (पाप) के अज (बदनामी) नहीं होती है । **"लाभु कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ।।"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

ऐसा कर्म करना चाहिये कि 'पावन यश' हमारी चर्चा से दूसरे को स्वर्ग मिल जाये । "बड़ा अच्छा आदमी था, बड़ा संयमी, सदाचारी था" ये पावन यश है और जब पावन यश नहीं होता है "अरे बड़ा बदमाश था, अच्छा हुआ मर गया" तो न भी नरक जाएगा तो नरक चला जाएगा । सबसे बड़ी हानि क्या है ?

"हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नर तनु पाई ।।" (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

भक्ति के समान कोई लाभ नहीं है ।

"**अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।।"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२)

चुगली, निंदा के समान कोई पाप नहीं है । दया करने के समान धर्म कुछ नहीं है ।

"भव कि परहिं परमात्मा बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक ।।" (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२)

भगवान् का भजन करने वाले भव सागर में नहीं जाते । हरि और हरि भक्तों की निंदा करने वाले कभी सुखी नहीं होते ।

"राजु कि रहइ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें ।। काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ।। (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

बिना नीति जाने राज नहीं चलता । पराई स्त्री से संपर्क करने वाले को शुभ गति कभी नहीं मिलती है । दुष्ट के साथ किसी को बुद्धि नहीं मिली आज तक । ये सब प्रमाण हैं । **अकीर्तिकरम्** और **अस्वर्गम्** का परस्पर सम्बन्ध है । पावन यश है तो अपने-आप उसकी शुभ गति होती है, नरक जाता है तो भी उसको स्वर्ग मिल जाता है ।

निर्मल मन में ही कर्म-कौशल

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

देखो, पहले श्लोक में तो भगवान् ने विषाद, जो उदासी या दुःख है इस मैल को बताया । दूसरे श्लोक में मैल आ गयी तो उसका परिणाम नरक या बदनामी (उस मैल का परिणाम) बताया । तीसरे श्लोक में कहा कि मैल का सबसे बड़ा नुकसान क्या है ? क्लैब्यं (अकर्मण्यता) । क्लीव कहते हैं नपुंसक को । नपुंसक में काम करने की शक्ति नहीं होती है । तुम क्लैव्य भाव (कर्महीनता) को प्राप्त हो गए हो, कर्मों को छोड़करके भाग रहे हो । मा - नहीं, नपुंसकता को मत, गमः - जाओ (प्राप्त हो), एतत् – यह, त्वयि - तुममें, न उपपद्यते - ठीक नहीं है, तुम्हारे जैसे महारथी में, हृदय का दुर्बल होना छुद्र नीचता है, नीच दुर्बलता को छोड़कर के खड़े हो जाओ, परन्तप - तुम तो बड़े तपस्वी हो । मैल रहेगी तो कर्म करने में वीरता नहीं आएगी और कर्म वही कर सकता है जिसका हृदय गन्दा नहीं है ।

.....

आराधना में अवरोधक भेदबुद्धि

(श्रीबाबा महाराज के प्रातःकालीन सत्संग (२४/७/२०१७) से संग्रहीत)
संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी अचलप्रेमा जी, मानमंदिर ,बरसाना

भक्तों की भी कोटियाँ होती हैं । ये बात श्रीमद्भागवत में कही गई है, तीन प्रकार के भक्त होते हैं –

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।(भागवत ११/२/४५)

सबसे उत्तम तो वे हैं जो प्राणीमात्र में भगवद्बुद्धि रखते हैं । ये उत्तम भागवत (वैष्णव) के लक्षण हैं । सबके प्रति भगवद्भाव में थोड़ा भी अन्तर आ गया तो उससे नीचे की कोटि हो गई –

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ (भागवत ११/२/४६)

ईश्वर में प्रेम करना, उसके भक्तों में मैत्री तथा अज्ञ लोगों पर कृपा (दया) करना, जो भगवान् और उनके भक्तों से द्वेष रखते हैं, उन लोगों की उपेक्षा करना, यह मध्यम श्रेणी के भक्त का लक्षण है।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

(भागवत ११/२/४७)

तीसरी श्रेणी के भक्तों को प्राकृत (प्रारम्भिक) भक्त कहते हैं। उन्हें निम्न कोटि का भक्त तो नहीं कहा गया क्योंकि जो भी भगवान् का भजन करता है, उसको अधम नहीं कहा जाता है। वस्तुतः इन तीन श्रेणी के भक्तों के लिए उत्तम, मध्यम और अधम नाम होना चाहिए परन्तु भागवत के उपरोक्त श्लोक में तृतीय कोटि के भक्त के लिए अधम नाम न कहकर प्राकृतिक भक्त कहा गया है अर्थात् उसमें प्रकृति का अंश अधिक होता है। वह केवल मूर्ति पूजा करता है लेकिन भक्तों में भाव नहीं रखता है इसलिए वह प्राकृत अर्थात थर्ड क्लास (तृतीय श्रेणी) का भक्त है। ये सब क्यों कहा गया, ताकि हम लोग उत्तरोत्तर ऊपर की ओर चलें। मूर्ति पूजा क्यों चलाई गयी, कब चलाई गयी और कब यह फल देती है, कब नहीं देती है ? ये बात नारद जी ने भागवत के सातवें स्कंध में बतायी है -

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता॥

(भागवत ७/१४/३९)

सतयुग में लोगों की सबके प्रति भगवद्बुद्धि थी, फिर धीरे-धीरे माया का प्रभाव बढ़ा तो माया ने भेद उत्पन्न किया और द्वेष पैदा हो गया फिर वह बात नहीं रही अर्थात् जो प्राणीमात्र के प्रति समता का भाव था, वह धीरे-धीरे विषमता में बदल गया और तब लोग एक-दूसरे का सम्मान नहीं करते थे, प्रेम नहीं करते थे, एक दूसरे से द्वेष करने लगे, परस्पर भेदबुद्धि रखने लगे, अपमान, उपेक्षा और अनादर करने लगे, जब ऐसा होने लगा तब समाज में विद्वान् महात्माओं के द्वारा मूर्ति-पूजा का शुभारम्भ किया गया। मूर्ति-पूजा से पारस्परिक आदर और प्रेम करने का अभ्यास हो जाता है। इसलिए उस अभ्यास को बढ़ाने के लिए यह प्रथा चलाई गई कि दिन-रात मूर्तिपूजा करो, अष्टयाम सेवा करो अर्थात् सुबह, दोपहर, संध्या और रात्रि आठों याम पूजा करो तब फिर तुम्हारी परस्पर में एक-दूसरे की पूजा करने की आदत पड़ जायेगी फिर किसी की अवज्ञा नहीं करोगे, किसी से द्वेष नहीं करोगे, किसी का अनादर नहीं करोगे, उपेक्षा नहीं करोगे। मूर्तिपूजा आठों याम चलती है अतः हर समय श्रद्धापूर्ण व्यवहार करोगे इसलिए मूर्तिपूजा चलाई गयी ताकि पारस्परिक विषमतापूर्ण व्यवहार मिट जाय, अगर नहीं मिटा तो उसका परिणाम सुन लो –

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम्॥ (भागवत ७/१४/४०)

मूर्तिपूजा के प्रचलन से बहुत से लोग भगवान् की आराधना करने लग गए, अच्छी श्रद्धा रखकर के पूजा करने लग गए। उपरोक्त श्लोक में 'संश्रद्धाय' बड़ा गंभीर शब्द है, इसको समझना जरूरी है। श्रद्धा ही कह देते तो पर्याप्त था, संश्रद्धा क्यों कहा ? इसका कारण यह है कि श्रद्धा से आगे है संश्रद्धा। एक अचेतन वस्तु को पूज्य मानना संश्रद्धा है। मूर्ति बोलती-चालती नहीं है, जड़ है और उसमें पूज्य बुद्धि रखना कि साक्षात् यही भगवान् हैं, ये है संश्रद्धा। अतः श्रद्धा से श्रेष्ठ है संश्रद्धा। जड़ वस्तुओं को भी चेतन की तरह मानकर व्यवहार करना ही संश्रद्धा है। पुरातन युग में कुछ लोग ऐसे थे जो श्रद्धा से उच्चतर कोटि संश्रद्धा तक पहुँच गए और उन्होंने उपासना अर्थात् पूजा किया। बहुत से लोग ऐसे हुए जिन्होंने उपासना किया लेकिन उस मूर्ति उपासना से कुछ अर्थ नहीं निकला अर्थात् लाभ नहीं हुआ। इस श्लोक की टीका में आचार्यों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि लोगों ने प्रतिमा को भोग लगाया, शयन कराया, ये समस्त क्रियाएं कीं लेकिन उसका कुछ फल नहीं मिला। प्रश्न उठता है कि ऐसा कैसे हुआ ? इसको वर्तमानकाल के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है, जैसे मंदिरों में जाओ तो ज्यादातर देखा जाता है कि वहाँ पुजारी लोग सारा जीवन पूजा-सेवा में बिता देते हैं लेकिन भक्तिशून्य अन्तःकरण बना रहता है, वे लोग आरती-पूजन आदि करके थाल पर ही नजर रखते हैं कि कितना पैसा चढ़ाया गया और जीवन पर्यन्त रुपये-पैसा, धन-संपत्ति, विषय-भोग आदि में आसक्ति बनी रहती है, तो उसका क्या फल मिला ? उन्हें भगवान् के प्रेम की प्राप्ति नहीं हुई (वास्तविक फल है – पंचम पुरुषार्थ भगवत्प्रेम-प्राप्ति)। अधिकतर मंदिरों में अर्पित किए गए पैसे, धन आदि के कारण लड़ाई-झगड़ा होता है, इस तरह मूर्तिपूजा एक कलह का कारण बन जाती है। ऐसा देखा गया कि एकबार किसी सुप्रसिद्ध मंदिर में सेवा को लेकर झगड़ा हुआ, पुलिस बुलाई गई, पुलिसवाले जूता पहनकर मंदिर के भीतर प्रवेश कर गए, फिर कोर्ट में मुकद्दमा चला और इस कारण से कई दिन तक ठाकुरजी की सेवा बंद रही, ये विवेकहीनता से उपासना करने का फल मिला। प्रायः मंदिरों के सेवकों में ऐसी विकृतियाँ आ जाती हैं कि गोली चलती है, लाठी चलती है। बीसों साल पुरानी घटना है - किसी जन-विख्यात मंदिर में एक गोस्वामी ने दूसरे गोस्वामी के ललाट में गोली मार दी और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। यह सांसारिक भोग, ऐश्वर्य आदि में महत्त्वबुद्धि रखकर उपासना करने का फल मिला। अधिकतर मंदिरों में धन-संपत्ति आदि के कारण इस तरह के झगड़े होते रहते हैं। सारा जीवन उपासना किया और परिणाम क्या निकला ? लड़ाई-झगड़ा तथा भोगासक्ति। भारतवर्ष के प्रसिद्ध मंदिर में एक गोस्वामी ने अपने रिश्तेदार की बहू को खुलेआम मंदिर में रखा, समाज विरोध करता रहा परन्तु कुछ नहीं हुआ क्योंकि पैसा ऐसी चीज है कि कोई कुछ

नहीं कर सकता, वह मंदिर एक भोग का अड्डा बन गया। जन्मभर मंदिर में सेवा की और परिणाम क्या निकला ? भगवद्विमुखता आ गई, भगवत्प्रेम से वंचित हो गए और केवल काम, क्रोध और विनाशी भोग मिला; ऐसा क्यों हुआ ? इसका उत्तर है कि यदि जीवों से द्वेष करोगे तो कोई भी उपासना फल नहीं देगी।

श्रीकपिल भगवान् ने भी कहा है –

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥

(भागवत ३/२९/२१)

इस श्लोक में बताया गया है कि यदि किसी की अवज्ञा (अनादर) किया तो तुम्हारी अर्चा अर्थात पूजा एक विडंबन (ढोंग) बन जाएगी, सारी पूजा जो तुमने किया वह एक आडम्बरमात्र रह गयी, उसका यही फल मिला।

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥

(भा.३/२९/२२)

अब इस श्लोक में कपिल भगवान् अपनी माँ से कह रहे हैं कि सभी प्राणियों की जो उपेक्षा करता है तो उसकी सारी पूजा राख में हवन करने की तरह व्यर्थ हो गयी। इसलिए नारदजी ने कहा कि द्वेष करने वाले को उपासना का कोई फल नहीं मिलता चाहे जन्मभर घंटी हिलाओ और समझते रहो कि हम बहुत बड़े भक्त हैं।

आज से लगभग पैंसठ साल पहले भारत के किसी प्रसिद्ध तीर्थ के विख्यात मंदिर के गोस्वामी कुख्यात गुंडे थे, इनसे सारा नगर भयभीत रहता था, इनके द्वारा मंदिर में जीवनभर सेवा-पूजा करने का परिणाम चोरी, लूटपाट और हत्या निकला। प्रायः कुछ मंदिरों में होली के दिनों में सुन्दर स्त्रियाँ नहीं जाती हैं क्योंकि उस समय गोस्वामी लोग होली खेलते हैं और कोई भी महिला निकलती है तो उस पर रंग छोड़ने के बहाने अभद्र व्यवहार करते हैं। क्या इन मूर्तियों (विग्रहों) की जीवनभर सेवा करने का यही फल मिला ? इसलिए श्रीभागवतजी में लिखा है कि राग-द्वेष के कारण लोग मूर्तिपूजा का वास्तविक लाभ नहीं ले पाते हैं।

। विश्वप्रसिद्ध मंदिरों में एक दिन में २०-२० लाख के फूल के बँगले बनते हैं और उस बँगले को बनवाने वाले का नाम भी लिखा जाता है कि आज की सेवा अमुक सेठ ने किया, क्योंकि मलमूत्रमय दुर्गन्धयुक्त देह (शरीर) के नाम-प्रचार की दुर्वासना मन में आ गई। अब २० लाख रुपये का फल क्या मिला ? केवल वासना की लोलुपता मिली कि हमारे नाम का प्रचार हो जाए। क्या ये भगवान् की सेवा मानी जायेगी अथवा अपने नाम की सेवा मानी जायेगी, स्वयं समझ लो। केवल बीस-बाईस लाख खर्च हुए अपने नाम के लिए और हजारों लोग मंदिर में दर्शन करने आये तो उन्होंने नाम पढ़ा कि आज का फूल बँगला अमुक व्यक्ति ने बनाया बीस लाख खर्च करके। अपने मान-सम्मान आदि की कामना 'अविनाशी फल विशुद्ध भक्ति' से विमुख कर देती है। भागवत के अनुसार इस तरह से इतनी बड़ी सेवा करने का कुछ भी फल नहीं मिला, सम्पूर्ण सेवा मिट्टी में मिल गयी, उसे भगवान् ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि द्वेष की आदत नहीं गई।

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति॥

(भागवत ३/२९/२३)

यदि भेददृष्टि से किसी को देखते हो तो ये द्वेष है। आज का सम्प्रदायवाद केवल भेद पर आधारित है। भेद देखना एक प्रकार का वैर है। द्वेष करने में पाँच चीजें बढ़ती हैं।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६/१८)

इस श्लोक को ठीक से समझो, नहीं तो जन्मभर उपासना करोगे और वह व्यर्थ जाएगी। 'अभ्यसूयक' अर्थात् दूसरों के दोष देखने वाले, निन्दा करने वाले लोग द्वेषी माने जाते हैं। द्वेष करने में पाँच चीजें अपने आप आएँगीं, जैसे पाँच उंगलियाँ एक साथ जुट के मूठ बनती हैं, घूँसा बनता है, वैसे ही द्वेष करने में एक तो अहंकार बढ़ता है, बल की अनुभूति होती है कि हम बली हैं, हमारा कोई क्या करेगा, दर्प अर्थात् घमण्ड बढ़ता है, कामना बढ़ती है कि उसका नाम अधिक हो रहा है, हमारा कम हो रहा है और क्रोध बढ़ता है। ये पाँच चीजें द्वेष में आती हैं लेकिन द्वेष करने वाला समझता है कि हम बड़े भक्त बन गए, इसका परिणाम यह होगा जैसा कि भगवान् ने कहा है -

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६/१९)

हम जैसे लोग सोचते हैं कि हम भगवान् के धाम जायेगें लेकिन उसके स्थान पर आसुरी योनि में पहुँच जाते हैं।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६/२०)

फिर वहाँ से मनुष्य निकल नहीं पाता है और जन्म-जन्मान्तर तक अधम गति को प्राप्त होता रहता है। हम सोचते रहे कि भगवान् के धाम में पहुँच जायेंगे वहाँ तो पहुँच नहीं पाए और आसुरी योनि से भी नीचे की गति हमें मिलती गई और नीचे गिरते-गिरते जड़ योनि की प्राप्ति हो गई। जड़ योनि क्या है ? जड़ योनि प्राप्त होने पर जीव को पेड़-पौधे, नदी, पहाड़-पत्थर आदि बनना पड़ता है। इससे जीव की चेतना ही समाप्त हो जाती है। यह तम का द्वार है, इससे छूटने के बाद जब भजन करोगे तब कल्याण होगा अन्यथा नहीं होगा। इसे स्पष्ट रूप से समझ लो –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६/२१,२२)

काम, क्रोध तथा लोभ - ये तम के दरवाजे हैं, इनको छोड़कर चलोगे तब तुम्हारा कल्याण होगा और यदि इसे नहीं मानते हो तो –

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १६/२३)

शास्त्रविधि का त्याग कर मनमानापन करने से न तो कभी सिद्धि प्राप्त होगी, न सुख मिलेगा और न ही परागति मिलेगी । यही बात भगवान् कपिल ने श्रीमद्भागवत में कही है – (भागवत ३/२९/२३) द्वेष करने पर कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी चाहे दिन-रात माला फेरो, घंटी हिलाओ और पूजा करो । कुछ लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने बहुत बड़ा भंडारा किया, बहुत सुस्वादिष्ट व्यंजन बनवाकर संतों को प्रसाद पवाया लेकिन भगवान् कहते हैं कि तुमने छोटे-बड़े पदार्थों से मेरी पूजा की लेकिन मैं संतुष्ट नहीं होता हूँ यदि द्वेषवश तुमने प्राणियों का अपमान किया, साधारण जीवों का अपराध किया । फिर भक्तों से द्रोह किया, उसका तो कहना ही क्या, वह तो ऐसा पाप है जो कभी नष्ट नहीं होगा । इस बात को भगवान् ने स्वयं आदिपुराण में कहा है । (आदिपुराण - २०/८८) । भगवान् के भक्त के प्रति किए गए एक भी द्रोह को तुम नष्ट नहीं कर सकते चाहे सैकड़ों जन्मों तक अनेक प्रकार के सत्कर्म करो, फिर भी उससे कुछ नहीं होगा, दक्ष ने जो यज्ञ किया था, वह सृष्टि का सबसे बड़ा यज्ञ था लेकिन उसका क्या परिणाम हुआ ? सती को अपने शरीर को भस्म करना पड़ा, स्वयं दक्ष का सिर काटा गया, उस यज्ञ में आये देवता मारे गए, किसी की आँख फूटी, किसी के दाँत टूटे, इतना महान यज्ञ हुआ और उसका इतना बुरा दण्ड मिला, यह एक द्रोह का फल है इसलिए आदिपुराण में भगवान् ने जो कहा, वह बिल्कुल अक्षरशः सही है, हमलोग उसे समझते नहीं हैं । लोगों का सारा जीवन भागवत कथा कहते-कहते बीत जाता है और यह देखा जाता है कि उन्हीं लोगों में भेदबुद्धि इतनी अधिक रहती है कि उसे भगवान् भी दूर नहीं कर सकते, जबकि ये भारतवर्ष के प्रसिद्ध कथावाचक होते हैं, सम्प्रदाय-भेद में वे ऐसे फँस जाते हैं कि जीवनभर भागवत के इन श्लोकों को पढ़ते हैं और कहते हैं फिर भी उनकी भेदबुद्धि दूर नहीं होती है । अधिकतर इसे सम्प्रदायों में देखा जाता है ।

श्रीसनकादिक कुमारों ने जय-विजय को श्राप दिया था तब भगवान् ने यह कहा था –

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥

भागवत ३/१६/१०)

भक्त भगवान् का शरीर होता है ।

श्वपचहू श्रेष्ठ होत पद सेवत ।
बिन गोपाल द्विज जनम न भावै ।।

(सूरदास जी)

श्रेष्ठ ब्राह्मण (ब्रह्म को जानने वाले) भक्त, दूध देने वाली गाय और अनाथ प्राणी – इन्हें केवल भेदबुद्धि से देखने के ही कारण, पाप से चेतना नष्ट हो जाती है । उसका फल है नरक, कैसा नरक, घोर नरक । वहां जब तुम पहुँचोगे तो सर्प से अधिक क्रोधी गीध रूपी दूत जो यमराज रूप में भगवान् के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं तुमको नोच-नोच के खायेगें । वे बराबर खाते रहते हैं, जीव जन्म लेता है फिर मरता है, यातना शरीर में ऐसा ही होता है । इसी बात को कहने वाले, जानने वाले ही अपने अनुयायियों को भेदबुद्धि सिखाते हैं, यह समाज की स्थिति है ।(भेदबुद्धि से यदि क्रियान्वित हुए तो उसका पाप व दण्ड अकथनीय है ।)

दक्षिण भारत में श्रीरामानुजाचार्य जी के शिष्य कूरेश जी सिद्ध भक्त थे । चोल-नरेश कोलुत्तुंग के द्वारा शास्त्रार्थ के लिए उन्हें बुलाया गया । वह अपने काका-गुरु के साथ उसके दरबार में गए । शास्त्रार्थ में चोल-नरेश के गुरुजन पराजित हो गए । साम्प्रदायिक द्रोह से ग्रसित होकर उसने उन दोनों की आँखे निकलवा दीं । इस यातना में मृत्यु से भी अधिक भयंकर कष्ट होता है । इतिहास में ऐसा जघन्य कार्य केवल औरंगजेब ने किया था । औरंगजेब ने अपने भाइयों को जेल में डाला और उनकी आँखे निकलवा दीं, जीवन भर उनको कितना कष्ट हुआ होगा । जो राजा थे, राजशाही-जीवन में जिनको इतना सुख था, राजगद्दी के कारण उनको इतनी भयंकर यातना दी गयी कि जीवन भर उन्हें तड़पना पड़ा । वही भीषण यातना साम्प्रदायिक द्रोह के कारण सनातनधर्मी लोगों ने भी एक-दूसरे को दीं तो क्या हमलोग औरंगजेब से कम हैं ? इस बात को समाज में कोई कहने वाला नहीं है और यदि कहोगे तो समाज में अधिकाँश लोग तुम्हारा विरोध करेगें । भागवत के श्लोक ३/१६/१० को पढ़ने-कहने वाले ही अपने अनुयायियों को साम्प्रदायिक भेद सिखाते हैं । इसीलिए नारद जी ने कहा कि ऐसे लोगों की सारी उपासना व्यर्थ है, प्रतिमा की उपासना उन्हें कोई भी फल नहीं देगी । जिन मंदिरों में आचार्यों द्वारा प्रकट किए हुए अर्चा विग्रह हैं, उन मंदिरों में अत्यधिक विकृतियाँ आ गयी हैं इसलिए जो शास्त्रविधि को नहीं मानता है, गीता के अनुसार उसे कुछ फल नहीं मिलेगा, मिलेगें तो केवल काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार; इसका कारण ये है कि हमलोग ही समाज को भेदबुद्धि सिखाते हैं ।

सत्संग से आसक्ति का नाश

श्रीबाबा महाराज के प्रातःकालीन सत्संग (१२/८/२००३) से संगृहीत

संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी श्यामा जी, मानमंदिर ,बरसाना

भगवान् ने गीता में कहा कि ब्राह्मी स्थिति में पहुँचने के पहले सभी सांसारिक कामनाओं को छोड़ना पड़ता है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ (गीता २/७१)

मनुष्य जब निर्मम, निरहंकार हो जाता है तब वह शाश्वत शान्ति को प्राप्त करके ब्राह्मी स्थिति में पहुँच जाता है, अन्तकाल आने पर भी उसको मोह नहीं होता है। तो अहंता-ममता है क्या ? वैसे तो अहंता की बहुत परिभाषाएं हैं। भगवान् ने कहा कि जब तक कर्त्तत्व है तब तक अहंता है, जैसा कि गीता में भगवान् ने कहा है –

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ (गीता ३/२७)

मोटी अक्ल (बुद्धि) से जब तक यह अनुभूति है कि मैं देह हूँ, यह अहंता है तथा शरीर में जो प्रियता है, यह ममता है। ममता जहाँ होती है वहाँ प्रियता आ जाती है, ये चीज मेरी है। स्त्री या किसी भी वस्तु में ममता है तो प्रियता आ जाएगी। जब मेरापन खत्म हो जाता है, मनुष्य को पता पड़ जाए कि मेरी पत्नी दुराचारिणी है, मुझे मारना चाहती है तो प्रियता समाप्त हो जाती है। जितनी ममता होती है उतनी ही प्रियता होती है, उतनी ही प्रीति होती है। ममता और प्रीति एक चने के दो दाने हैं। ममता नहीं रहेगी तो प्रीति ख़त्म हो जाएगी। इसीलिये स्वयं भगवान् ने कहा है –

"ममता मम पद कंज ।।" (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ३८)

हम इस शरीर को अपना समझते हैं इसलिए प्रीति है और किसी चीज को अपना समझने से प्रेम पैदा होता है। किसी चीज को अपना न समझो तो संसार में प्रेम ही नहीं पैदा होगा।स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति, शरीर आदि में प्रेम पैदा होता है केवल अपना समझने से। इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा - (गीता (२/७१) मम (ममत्व) चला गया, निरहम् हो गया यानि अहंता-ममता चली गयी तो ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हो गयी, इसमें आने पर फिर कभी जीव को मोह ही नहीं होता है। अनन्तकाल के लिए वह भगवद्स्वरूप बन जाता है, भगवान् का बन जाता है। ये दो बीमारियों अहंता-ममता के छूटते ही जीव ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हो जाता है और इन्हीं को छोड़ने के लिए सत्संग किया जाता है, क्योंकि जब तक आसक्ति है यानि चिपकने से ममता बुद्धि होती है। सत्संग का मतलब ही है संसार की सभी आसक्तियाँ छूट जाएँ –

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥

(भागवत ११/१२/१,२)

योग कर लो, सांख्य कर लो ये सब व्यर्थ हैं, इनका कोई महत्व नहीं है, इनसे भगवान् वश में नहीं होते, धर्म कर लो उससे भगवान् वश में नहीं होते, स्वाध्याय कर लो, बड़े भारी बन जाओ, तपस्या कर लो, त्याग कर लो, व्रत कर लो, यज्ञ कर लो, वेदों का अध्ययन, पठन-पाठन कर लो, कुछ नहीं है। सब तीर्थों में घूम आओ, नियम ब्रह्मचर्य आदि जितने भी हैं इनको कर लो, दसों नियम कर लो अपरिग्रह आदि। भगवान् कहते हैं जैसा मैं सत्संग से प्राप्त होता हूँ उतना अन्य किसी साधन से नहीं। सत्संग उसको कहते हैं जहाँ आसक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। ये नहीं कि सत्संग करने गए और वहाँ सोच रहे हैं कि हम बड़े कथावाचक बन जायें, हमारा नाम हो जाय, गाड़ी आ जाय, कार आ जाय ये सब नहीं, ये तो और विनाश हो गया। सब प्रकार की आसक्तियों का समाप्त हो जाना ही सत्संग है लेकिन यहाँ इस तरह की कामनाओं से तो आसक्ति और बढ़ गयी, असत्य में आसक्ति हो गयी, इससे कोई लाभ नहीं है, ये तो आत्मवञ्चना है, धोखा है। सत्संग का अर्थ है - सब आसक्तियों का समाप्त हो जाना - मान-सम्मान, धन आदि की कामना समाप्त हो जाना, केवल कृष्ण ही शेष रहें बस । आसक्ति माने चिपकना, किसी भी प्रकार से चिपक जाओ। ममता होती है तब मनुष्य चिपकता है, ममता (मेरापन) नहीं होगा तो नहीं चिपकोगे।(गीता २/६२) ध्यान (मन) जब बार-बार विषय की ओर जायेगा तो आसक्ति हो जाएगी, आसक्ति से फिर कामना पैदा हो जाती है। ऐसे में जिस विषय या स्त्री के प्रति आसक्ति है तो उस आसक्ति को समाप्त करने के लिए प्रतिपक्षी भावना करो- स्त्री व्याघ्री (बाघिन) है, खा जाएगी। प्रह्लादजी ने भी नृसिंह भगवान् से कहा था –

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥

(भागवत ७/९/१६)

मुझे आपके नृसिंह रूप से भय नहीं लगता, आप तो काल के भी महाकाल हैं, मुझे इससे डर नहीं लगता, डर लगता है जो यह आसक्ति है संसार की। स्त्री बड़ी प्यारी लगती है, बेटा बड़ा प्यारा लगता है, मैं उससे डरता हूँ, इस संसार की चक्की में हम पिस रहे हैं, उधर से चक्की पीस रही है, इधर से स्त्री, पुत्र आदि खा रहे हैं जो कहते हैं कि - लाओ पैसा। अपने कर्मों का अलग से बंधन है, मैं अपने आपको छुड़ा नहीं सकता कि चक्की से बाहर निकल जाऊँ या ये जो जीव हमको खा रहे हैं - स्त्री, पुत्र आदि इनसे अपने को छुड़ा सकूँ, जैसे तुमको कोई कीड़ा काट रहा है तो उसको हटा दो, तो वह ताकत हमारे में नहीं रही क्योंकि हम अपने कर्मों से बंध गए हैं। इसलिए हे भगवान् नृसिंह ! आप मुझे स्वयं कब बुलाओगे ? डरना इससे चाहिए कि हमारी आसक्ति न हो जाय। गृहस्थी की आसक्ति स्त्री, पुत्र आदि में होती है और साधु की आसक्ति होती है अपने मान–सम्मान में या इन्द्रिय-सुख, शरीर-सुख में, इससे डरना चाहिए। काल से नहीं डरना चाहिए। काल से डरने से क्या होगा ? वो तो ले ही जायेगा, इसलिए उससे पहले यदि अभय हो जाओ तो काल की सत्ता मिट गयी। जीवन भर आदमी कमा के लाता है और अपने परिवार वालों को देता है तो सारा जीवन ग्रसित हो गया, इसका मतलब क्या स्त्री, पुत्र आदि को छोड़ दिया जाय ? नहीं, ये समझने पर आसक्ति घटती है और आसक्ति घटने से भक्ति दृढ़ होती है, ज्ञान दृढ़ होता है तो दोनों पक्ष का कल्याण होता है। बच्चे बिगड़ते क्यों हैं ? माँ-बाप आसक्ति में बंध गए, वे डांट नहीं सकते, फटकार नहीं सकते, गलत बात का पक्ष लेंगे, न्याय नहीं कर सकते, लड़का गलत काम भी कर रहा, यदि वह हुक्का पी रहा है तो बाप बैठा हँसता है और बड़े प्रेम से कहता है कि अरे साले, अभी से हुक्का पीता है।

DHAAM-NISHTHAA

-ravi mongaji, new delhi

It has been said that one cannot understand Vrindavan's true *swaroop* (real appearance) even if one is staying in Dham. One shall understand the glories of Dham only when one has Radha Rani's lotus feet in his heart. As also mentioned earlier about Awadh: " *Jab urr basai Ram Dhanoo paani* ", Only when the Bow wielding Lord Ram takes seat in your heart shall you realize the potencies of Dham. Not before that, ever. Being scholarly does not help at all. Only when one's *isht, Dhaami* takes seat in one's heart, can one obtain Dham Nistha. Prior to this, it's a vacuum. People are found debating "Is God not all pervading and Omni present? Where is he not? They come up with such ideas that one is forced to remain silent. They say that we are trying to prove that God is not all pervading. All I want to say to them is that O dear ones, we absolutely agree that God is all pervading but all we are doing is believe in what has been declared by true saints of the past. If you want to sue me, you would rather sue those *mahapurush* (saints). I am a mere parrot and have memorized these facts by heart and keep repeating them. God, the all pervading is like a tree. It happens that a fruit appears on this tree. Tell me, what is better to eat, the tree or the fruit from the tree. Of course, the fruit. I shall explain everything with scriptural evidences. If I eat the fruit, it does not mean that I have denounced the tree or have chopped it off. The relishing fruit had appeared from the tree and the fact is that by my eating it, my Nistha for the tree only grew in the process. The one who sees the tree and its fruit as different entities is a deluded person. God, the master of infinite universes does stay only in Braj. They say that by saying this we are limiting him, under stating his glories. They keep coming up with big arguments. Hear this

Bhovan anek roam prati jaasu
Yeh mahima kachu bahut naa taasu.

People say that we have reduced the master of infinite universes to just a master of a small place like Awadh. No we did not. One should ask the tree why it bears fruit. Why does tree not turn into a big fruit?

Should one eat the whole tree? Should one eat the barks of a mango tree?

Soaoo jaane kar phal yeh leela
Kahe hi mahamunivar damsheela

It is not that we reduced God into a limited size. We only turned him into a fruit of nectar. This is so as only a fruit can bear nectar and not a tree. Hence, one should understand the glories of Dham. If one does not understand these glories then he shall not obtain the nectar of dham and is a fool no matter how brilliant a scholar he is. It is not me saying this, it is Goswami Tulsidasji saying it and if you wish to sue somebody it should be him and not me. Even He put up a caveat as he actually said this principal has been declared by great saints of the past. You never know when a critic can come up with a bold new negative counter point. Hence, he said that really great saints have concluded this concept that when god turns into a dweller of one place only then true nectar can be formed. It is after understanding these glories can one come to relish the nectar of God.

So mahima khagesh jin jaani
Phir yehi charit tin hi rati maani.

O Garud ji, people who have understood these glories then relish the nectar that follows while (baba says) people like me only come up with counter questions, doubts and arguments and also claim to be learned scholars. They after having understood all the glories accept the supremacy of dham. It is very difficult to understand this concept.

The same has been said about Braj Vrindavan. Let us now talk about Braj now. It is declared by Radhe Sudhanidhikar's that one cannot understand the glories of Braj Vrindavan. One can counter claim that he has studied a lot on the subject. But that is not important at all. One can claim to be a complete renunciated ascetic. Well, renunciation con go to a *choolah* (oven). Even a Bhramaanandi (person in a state of Bhram / supreme beatitude) cannot perceive Braj. Radha Sudha Nidhikar's *brahmanandaika-vadah katucana bhagavad-*

What to talk about Baba ji, Abaaji, even a person who is *Bhrmanandi* cannot realize Braj. What to do? Well, Rasik's spell out the way

The *kripa* (mercy) of Dham has been defined at three levels. The first are they who can see the Dham clearly. The *Divya* (divine) Barsana, *Divya* (divine) Vrindavan. They see the *Divya* (divine), *chinmay* (eternal), *manimay* (laden with priceless stones) Dham. Not all can visualize the true Dham. It is not for people like me who do not have eyes. So who are the ones who can? They are the ones where "*Yad Radha Pad Kinkiri Krita Hridam, Samyek Bhavet"* exists.

It is when you get *kainkarya* towards the lotus feet of Laadli ji (Radha Rani). It is when the concept of I being the body goes. When you stop believing that you are a body of 30, 40, 70 years, young or old at age. It is when one stops seeing identities. The belief that I am Gopal Das, he is Shyam Das and someone else is Ram das should not be there. The fact is that only *kainkaryas* exists and all are s*akhis* of Radha Rani. They are the ones who see the Dham clearly. This has been declared by the Rasiks. If you have any doubt then you better keep it with yourself as I have no answers to them. I only speak from the scriptures and nowhere else.

Yad Radha Pad Kinkiri Krita Hridam, Samyek Bhavet Gocharam. To understand Shrimad Vrindavan, one needs complete kripa of Kishori Ji (Radha Rani). One understands simply nothing without Radha Rani's mercy. Only after her mercy does one see Dham. This is the first level of Dham's mercy. The same philosophy had been declared earlier in Ramayan.

Avadh Prabhaav jaanay tab praani, Jab urr basai Ram Dhanoo paani One can match both. It is the same principal for dham. The difference that exists, does so only in our hearts.

Yad Radha Pad Kinkiri Krita Hridam, Samyek Bhavet Gocharam.

One can clearly see the real Dham. And how is the real Dham .